श्री जानकी बिन्दु

श्री काष्ठजिह्व स्वामी (श्री स्वामी देवतीर्थ)

कृत

प्रकाशन

डी० ५३/४६ लक्सा, वाराणसी ।

श्री जानकी बिन्दु

श्री काष्ठजिह्व स्वामी (श्री स्वामी देवतीर्थ)

कृत

श्री प्रकाशन

डी० ५३/४६ लक्सा, वाराणसी।

प्रकाशकीय

अनन्त श्री विभूषित श्रीमद् देवतीर्थ स्वामी जी कृत श्री जानकी विन्दु, श्री शोध संस्थान के अन्तर्गत चलने वाले इस क्रम का आरंभ विन्दु है जो श्री संस्थान के संस्थापक का अत्यधिक सुचिन्तित कार्य-क्रम रसिक सन्तों पर जीवनी सहित संग्रह और शोध सम्बन्धी रहा है। श्री संस्थान के संस्थापक आचार्य सुरेन्द्र-प्रताप एम० ए०, तंत्राचार्य, का यह स्वप्न तब से क्रमशः चल रहा था जब वे श्री साकेत डिग्री कालेज में प्रध्यापक थे। श्रीसंस्थान की स्थापना श्री अवध में होने वाली थी। 'श्री' की कृपा कब तथा किस माध्यम से होगी कथनातीत है। आज छः वर्ष बाद यह स्वप्न पूरा हुआ और श्री संस्थान मानस से उदित होकर 'श्री' कृपा से प्रत्यक्ष रूप ले सका। श्री प्रकाशन के अन्तर्गत 'श्री' उपासना का यह ग्रंथ प्रकाश में आ रहा है जिसे 'श्री' कृपा का फल ही कहना चाहिए। श्री उपासना के क्षेत्र में यह ग्रंथ 'श्री जानकी बिन्दु' अपना बिशिष्ट स्थान रक्खेगा ऐसा मेरा विश्वास है। आशा है रसिक सन्त, मनीषी एवं विद्वान इसमें रम सकेंगे और श्री उपासना को नई दिशा मिलेगी। और अन्त में हम श्रीकाष्ठ जिह्व, स्वामी के प्रति श्रद्धानत होते हैं जिनकी कृपा से ही यह कार्य संभव हो सका है।

वसंत पंचमी २०२३

(स्वामी) भिक्षु आनन्द
निर्देशक श्री संस्थान।

—:०ꕥ:०—

श्री शोध संस्थान के निर्देशक का वक्तव्य

श्री संस्थान के अन्तर्गत् श्री शोध संस्थान, श्री सम्प्रदाय की श्री रामोपासना शाखा के आचार्यों, रसाचार्यों एवं विद्वानों के ग्रंथों तथा व्याख्यानों का संकलन इस उद्देश्य से कर रहा है कि उनसे 'श्री' उपासना के दार्शनिक तथा व्यवहारिक पक्ष पर प्रकाश मिल सके। संकलन, प्रकाशन, तथा शोध का यह कार्य-क्रम इस लिए आवश्यक समझा गया है कि इस संप्रदाय की रसिक परम्परा के बारे में जो भ्रम विद्वानों में फैला हुआ है उसका निवारण हो सके और विद्वानों, सन्तों एवं आलोचकों को वस्तु स्थिति तथा इस उज्वल रस उपासना का दार्शनिक दृष्टिकोण जानने का सुगम तथा सरल मार्ग मिल सके।

अत्यंत प्रसन्नता का विषय है कि श्री संस्थान जिस उद्देश्य को लेकर हमारे समक्ष उदित हुआ है, उसी दर्शन और उपासना को समक्ष रखने वाला ग्रन्थ श्री जानकी बिन्दु-श्री देवतीर्थ स्वामी रचित, उसके प्रथम प्रकाशन का बिन्दु स्थिर कर रहा है। 'श्री' की कृपा का प्राञ्जल प्राकट्य श्री जानकी बिन्दु के रूप में हुआ है ऐसी हमारी धारणा है। हमें पूर्ण विश्वास है कि यह ग्रंथ श्री-संस्थान के उद्देश्य पूर्ति में सहायक सिद्ध होगा। श्री का उज्जवल प्रकाश सबको समान मिले, इन शब्दों के साथ मैं अपना वक्तव्य समाप्त करता हूँ।

वसंत पंचमी २०२३

पद्मनारायण आचार्य
अध्यक्ष हिन्दी विभाग
काशी हिन्दू विश्व विद्यालय,
वाराणसी
निर्देशक श्री शोध संस्थान।

श्री जानकी बिन्दु तथा श्री देव तीर्थ स्वामी
'काष्ठ जिह्व स्वामी'

श्री काष्ठ जिह्व स्वामी जी महाराज ने श्री सीताराम जी की माधुर्य उपासना के सिद्धान्त का निरूपण श्री रामसुधा में श्री मिथिलेश नांदिनी जू से हनुमान जी के प्रति कहे गए अवतरण में अत्यन्त मार्मिक रीति से सजाया है।

संसार क्या है ? यह सत्य है या असत्य है ? श्रुतियाँ इसे सत्य और असत्य दोनों हीं ठहराती हैं, उपनिषदें सत्य और असत्य का मिला जुला रूप मानतीं हैं- युक्ति के विषय में स्वामी जी कहते हैं—

'सत्य असत्य उभय मिलि यह जग अकथ कथत नहीं आवै।
नील पीत मिलि हरित भयो जस तीसर रंग कहावै ॥ दे०रा०

यह हुई उपनिषद् की युक्ति, नील-पीत दृष्टांत उपनिषदीय दृष्टांत है।

श्री काष्ठजिह्व स्वामी संसार को श्री राम बिहार का स्थल मानते हैं, दूसरे शब्दों में जगत को वहाँ तक ही सत्य मानते हैं जहाँ तक भक्ति, भक्त, भगवन्त, और गुरु से सम्बन्धित है-

'कोउ कोउ यह लषि पावा जग है राम बिहार।' दे० रा०

संसार की विविधता, बैचित्र्य, तथा व्यावहारिक नाना प्रकार के विषय में वह कहते हैं -

'भाव विशेष एक उत्तर शत महाभाव एक सार।
नाना भावन तें अस झलकत एकै यह करतार ॥' दे०रा०

दृष्टियों का अन्तर है, संसार को गोस्वामी जी जैसे भक्त ने

भी अत्यंत रहस्यमय बताते हुए नित्य कहा क्यों कि श्री सीताराम जी महाराज की यह लीला भूमि है। श्री काष्ठजिह्व स्वामी का भी कहना है कि-

'ऐसो नित्य बिलास राम को दासन को आधार।
सकल देव ब्रह्मादिक निरखहि सत्चित् मोदकार ॥' दे०रा०

अतएव श्री राम भक्तों ने जगत् को अनश्वर तथा श्री सीताराम जी महाराज का नित्यक्रीड़ा स्थल माना है।

अब हम भक्ति में जीव की स्थिति पर विचार करते हुए अन्य मतों के बीच भक्ति मत की सारता की परीक्षा करेंगे-

भारतीय दर्शन में जीव तथा ईश्वर में, जीव को ईश्वर का प्रतिबिंब कहा गया है। आत्मा और परमात्मा में- आत्मा को परमात्मा का, भक्ति मार्गी सन्त अंश कहते हैं। ब्रह्मवादी प्रतिबिंब कहते हैं। गोस्वामी तुलसी दास जी ने 'ईश्वर अंश' जीव अविनासी' कहा। ब्रह्मवादियों का यह कहना कि जीव भी अनश्वर हैं, भक्ति मार्गी मानते हैं किन्तु जीव ब्रह्म की छाया है ऐसा भक्ति मार्गी नहीं मानते। श्री काष्ठजिह्व स्वामी ने इसी मत में जीव और ईश्वर दोनों को आत्म तत्व माना, दोनों का पृथक शरीर भी माना, एक का विग्रह रूप तथा दूसरे का प्रकृति रूप। जीव प्रकृति रूप है और ब्रह्म विग्रह रूप-

'जीवेश्वर दुइ आतम गाये जीव तहाँ ईश्वर को चेरो।
देह भयो दूनों की टीका यातें सो विग्रह करि टेरो॥ रा० सु०

दोनों, जीव तथा ईश्वर के रूप में वह जो अन्तर पाते हैं वह है, जीव प्रकृति आवेष्ठित है तथा ईश्वर विग्रह रूप है जहाँ सत् चित् आनन्द की स्थिति बनी रहती है- अन्तर प्रकृति द्वारा होता है, यही प्रकृति माया नाम से गिनाई गई है-

'सोई तम माया कहि गाई रचत जीव गन बि बध घनेरो।
तन अनुसार कर्म तब लागे यह विधि माया जीवहिं पेरो ॥रा०सु०

सामान्य जीव और भक्त के बीच श्री स्वामी जी ने अन्तर स्पष्ट किया, जीव के साथ जड़ता की स्थिति अविद्या माया द्वारा बनाई जाती है, जो प्रत्येक शरीरधारी के साथ लगी हुई है, भक्त अविधा या जड़ता को छोड़ कर कैसे पृथक होता है ? इस सम्बन्ध में उनका कहना है कि भक्त, जीव और ईश्वर दोनों की स्थिति के बीच उज्वल अवधि की स्थिति में रहता है—

'जड़ि उपाधि की अन्तरतम है ताहि तजे जो रहत बड़ेरो।
जीवेश्वर ते पृथक तीसरो अवधि देव सो जगत उजेरो ॥रा०सु०

जीव भक्त कैसे होता है ? वह भक्ति क्या है और जीव और ईश्वर के बीच उज्वल सन्बन्ध भी है अथवा नहीं ? इन प्रश्नों का उठना अत्यंत स्वाभाविक है। यह उज्वल अवधि की स्थिति क्या जीव और ब्रहम के बीच की कोई सम्बन्ध जनित स्थिति है, इस विषय में श्रुतियाँ तथा उपनिषदें अनेक बातें कहते हैं, कुछ ईश्वर तथा जीव में अभेद और जीव का ब्रह्म में समाहित हो जाना मानते हैं और कुछ जीव को ईश्वर के ही प्रकाश से प्रकाशित मानते हैं। यहाँ हम इस निष्कर्ष पर पहुँच चुके हैं कि ईश्वर और जीव दोनों की अपनी अपनी स्थिति हैं।

ब्रहम विग्रह है और जीव शरीरधारी, दोनों के दो रूप हैं इस लिए जीव और ब्रहम के बीच कुछ विशेष स्थिति में ही कोई सम्बन्ध स्थापित हो सकता है वह विशेष स्थिति जीव की कैसे और कैसी हो ? वही स्थिति उज्वल अवधि की स्थिति है जो भक्त की होती है।

श्री काष्ठ जिह्व स्वामी श्री जानकी विन्दु में कहते हैं--

'जीव फूल साधू जन अरपैं देव अनन्दन को मुलवा ॥जा०बि०

इस प्रकार जो जीव अपने आत्मतत्व को ईश्वर विग्रह रूप को समर्पित कर देता है वह जीव अहमन्यता अर्थात् अविद्या माया की स्थिति से उठकर अपने इष्ट (ईश्वर विग्रह) को सर्वत्र देखने लगता है और उसमें उज्वल स्थिति का समावेश हो जाता है।

भक्ति, जीव की ईश्वर के प्रति सम्बन्ध जनित अनुरक्ति को कहते हैं। इस सम्बन्ध जनित स्थिति पर महाभागवतकारने नवधा भक्ति का निरूपण दिया है। यहाँ हम श्री काष्ठजिह्व स्वामी किस भक्ति को विशेष सम्बन्ध की भक्ति मानते हैं कहेंगे। श्री स्वामी जी ने अनेक मत मतान्तरों, अनेक विग्रहों तथा अनेक सम्बन्धों का प्रत्यक्ष अनुभव किया है, इसके साक्षी उनके चालीस से ऊपर प्राप्त ग्रन्थ हैं। उन्होंने दो रूपों को श्रेष्ठ माना, प्रथम बालक विग्रह रूप किन्तु जब श्री स्वामी जी उसमें नहीं रम पाये, कारण जब इस रूप के प्रति वह आत्मसमर्पण न कर सके अर्थात् उज्वल स्थिति नहीं आई तो उन्होंने कुंवर रूप अर्थात् विग्रह का षोडश वर्षीय रूप ही सुचिन्तित और परम उज्वल स्थिति लाने वाला माना। वह कहते हैं कि—

'सब संत कुमार सरूप भजत।
जाकी रूप छटा को निरखत, सो ग्यान बिराग तजत।
अलक कपोल झलक कुण्डल की चितवनि हँसनि अनूप सजत॥
ग्यान सरूप ग्यान पूरन को चितत दूरि बलाय भजत।
ऐसो सदा देव महिमा को बेद नगारो गरजि बजत॥ द०ए०

शरणागति के विषय में श्री स्वामी जी श्री सीता जू की शरण में जाने का निर्देश करते हैं। क्योंकि वह श्री राम जी तथा श्री सीता जी में एकता पाते हैं—

'सीतै राम रामैं हैं सीता दोउ एकै देखि परत हैं।
दोऊ जग तारन की सीमा केवल प्रेमहिं पाय ढ़रत हैं॥रा०सु०

अभिन्नता के सम्बन्ध में अर्थात् श्री सीताराम जी कैसे एक हैं वह कहते हैं-

'सीय भूमि आराम राम जू मिली सनातन जोरी।
चंपक केसर धार परत हैं ओढ़र दाड़िम रोरी॥' रा०सु०

अर्थात् श्री सीता राम जू के प्रति चंपक केसर धार सदृस भाव भी माधुर्य रस पूर्ण अनुराग युक्त 'ओढर दाड़िम रोरी' जैसा सम्बन्ध हो स्थापित करेगा।

माधुर्य उपासना पर श्री स्वामी जी ने अत्यंत ओज पूर्ण शब्दों में कहा है कि ईश्वर योगियों के मानस में आनंद की सेज पर सो जाओ, जहाँ चारो वेद पलंग के पाए हैं, उपनिषदें पुराण आदि गद्दा तकिया और चद्दर है पराभक्ति की ठकुराइन इस पलंग पर सो रही है हे प्रभु इन योगियों की ठकुराइन के साथ सोओ। ब्रह्मविद्या वाले बुद्धि की पलंग बिछाये हुए हैं—आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार और समाधि के चार पाये पलंग में लगे हैं उसपर पराविद्या की ठकुराइन सो रही है आओ तुम भी सोओ। माधुर्य रस में पड़ा जीव स्वयं साथ-साथ सेवा का आनन्द ले रहा है जब कि योगी, ब्रह्मवादी अपने अहं में फूला अपने को ही ईश्वरता के गुण से ओत-प्रोत हो माया अंक में सो रहा है।

देखें :—

पवढ़ो प्रभु आई। जोगिन के मानस में आनंद सेज बिछाई॥
चारिउ वेद पलंग के पाए अंग उपंग सहाई।
पराभक्ति ठकुराइनि बिलसै सिर तकिया सुधराई।
कोउ बुद्धि पलंग बिछावत पाये चारि उपाई॥
तहाँ पराविद्या ठकुराइनि अनुभव रस सरसाई॥
ब्रह्मादिक की गति जहँ नाहीं पवनौं जहाँ न जाई।
भक्ति सहित तहँ सुख से सोवहु जगमग जोति जगाई॥

प्रवल बिराग जहाँ को पहरू सिद्धिउ नहि नगिचाई।
सयन आरती होन लगीं है देव करत सेवकाई ॥ रा॰ सु॰

इस प्रकार श्री काष्ठजिव्ह स्वामी ने श्री सीताराम जी की माधुर्य उपासना को श्रेष्ठ माना। ऐसा लगता है कि इस सन्त ने अपने जीवन भर के अध्यात्मिक अनुभवों के चक्षु से एक रस होकर दिव्य रूप का दर्शन किया है। अन्तर्साक्ष्य के आधार पर यह कहा जा सकता है कि देवतीर्थ स्वामी अद्वैत मार्गी थे, बाद में वह ज्ञानयोग, कर्मयोग को भूमि पर भी उतरे और अन्त में जैसा कि उन्होंने श्री जानकी बिन्दु में लिखा है कि 'सब टकटोरि लए' वह श्री सीताराम जी को माधुर्यमयी एकान्त उपासनाँ में आए—

'अब सिय जू के सरन भए, सब टकटोरि लए ॥
रसना कारन दँड कमँडल माँगत जनम गए।
व्रह्म बनन के एई-लच्छन झूठन के सिखए ॥
सीधो अरथ न मानत श्रुति को, खैंचि बादि मचए।
पछिला पद कुठहर नाहिं सँभरत, बिनु अवलँब हए ॥
साँचे भेष देख के मारे अन्दर लोभ छए।
तिनके सँगहु ते छिन-छिन में, पापहिं को बढ़ए।
जरो बड़ाई जरो ग्यान वह, जहाँ न मान छए।
देव दुहाई दीन होत हीं, नित आनन्द नए ॥ जा॰ बि ॥

हमने श्री काष्ठजिव्ह स्वामी का भक्ति दर्शन संक्षेप में देखा, अब हमें यह भी देखना है कि इस साधक सन्त में क्या क्या मिलता है। यदि हम यह कहें कि स्वामी जी का काव्य सर्वगुण सम्पन्न है तो अत्युक्ति न होगी। काव्य के अंग उपंग, शास्त्रों की मीमासाएँ, संगीत की प्रवहमानता, जीवन की अनुभूतियाँ भावों की तल्लीनता, काव्य में सत्य, काव्य में शिवत्व तथा काव्य

में सौंदर्य का स्वामी जी के ग्रन्थों में जो समन्वय मिलता है वह किसी सन्त के काव्य में एकत्र दुर्लभ है।

भक्ति शान्त रस की वर्ण्य सामग्री है, किन्तु श्री काष्ठजिव्ह स्वामी के श्री सीता जी में तो नव रस एकत्र प्राप्त हो जाते हैं—

'नव रस लसत सिया जू को तन में।'

शृंगार— नख सिख लौं सिंगार बिराजत,'

करुणा—'करुणा हिय नयन में।'

बीर— 'लाल बीररस सोहत करतल,
पदतल औ, अधरन में॥'

हास्य— 'कछुक हास रस अरध अधर लौं,

अद्भुत—'अद्भुत रस चरितन में।'

भयानक—'बड़ो भयानक रस भृकुटिन मँह,'

रौद्र— 'रौद्र पाप नासन में।'

वीभत्स — 'जन दुख सुनत बिदेह दसा जो तहँ जो रस छन २ में
सो विभत्स भद्र दायक अति जस सावन मासन में॥'

शाँत— 'मृदु सुभाव सो अतुल साँत रस,।" जा० विन्दु,

भावना पूर्ण सन्त ने प्रकृति को उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत न रखकर उत्प्रेक्षा की वस्तु बना दियाहै —

'छवो ऋतु सिय जू की आँखिन में। खोलि कहौं लाखन में।'

इस प्रकार का षट्ऋतु वर्णन सन्त साहित्य क्या हिन्दी साहित्य में दुर्लभ है। नेत्रों में छः ऋतुओं का समावेश किसी कबि ने नहीं किया है। श्री किशोरी जू प्रकृति रूपा हैं, प्रकृति

मात्र में व्याप्त हैं ऐसा तो दार्शनिकों ने बहुत लिखा है किन्तु श्री किशोरीजू के नेत्रों में छः ऋतुएँ निवास करती हैं ऐसी उत्प्रेक्षा किसी ने नहीं की है काव्य में उत्प्रेक्षा माने या यह माने कि 'उद्भव स्थिति संहारकारणी' श्री सीता जी की 'भृकुटि विलास जासु लय होई। राम बाम दिसि सीता सोई' दृष्टि निश्चय ही षट्ऋतु गुण युक्त है। काष्ठजिव्ह स्वामी का यह वर्णन देखें—

ग्रीष्म्—'दृग प्रताप जड़ता नासन जो, सोइ ग्रीषम भाखन में॥'

वर्षा— 'तड़ित जोति घनघटा कजरवा, सो बरखा रस राखन में॥'

शरद—'सरद सफाई जो तारन में पंक न रज राखन में॥'

शिशिर-'गलित मइल नौ जोति सिसिर रितु नए पात साखन में।'

हेमन्त—'हिम निरोगता तेज प्रबलता, जस दीपक छबि ताखन में॥'

बसंत—'कछु वसंत लखि परत ललाई, जो दरसत पाखन में॥'

अलंकार के विषय में, श्री स्वमी जी ने अधिक उपमा तथा उत्प्रेक्षा को ग्रहण किया है कहीं-कहीं प्रतीक अलंकार का भी ग्रहण अत्यंत सरसता से हुआ है।

पूर्णोपमा का एक उदाहरण प्रस्तुत है जिसमें श्री किशोरी जू के मुख की उपमा चन्द्र से दी गई है। मुख के साथ षोडश कलाओं से दंत की, चन्द्र की चन्द्रिका से श्री किशोरी जू की चन्द्रिका की, चन्द्र के समीप तारागणों से श्री किशोरी जू के वस्त्रों में लगे मोतियों से, अलक की राहु से जो उपमा श्री स्वामी जी ने दी है वह बड़ी सारपूर्ण है—

सिय जू के मुख जनु पूरन चंद, जहँ बरसि रहा आनन्द।
झलकहिं दंत कला तेइ सोरह अबर अमिय को कन्द।
हँसनि लसनि चन्द्रिका हरति सो ध्यान जननि की दंद॥
अँबर में तारा मोतिन की झल-झल झलक अमंद।

एकै अंक अचल व्रत पालन अंक न और पसंद ॥
करत निसा से निसा सरद की जाको सुजस बिलंद।
स्याम ललित चोटी ब्धन मिस परो राहु जनु फंद ॥
परम सुखद उल्लू जनहूँ को जो बिहरत निज छंद।
राम चकोर देव बंदीजन हरत मोह तम फंद ॥

श्री स्वामी जी की उत्प्रेक्षायें नित नवीन स्थूल से सूक्ष्म और सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होती चली गई हैं। उत्प्रेक्षाओं का धनी यह सन्त कबि भक्तों के हृदय को तो प्रभावित करता ही है, साहित्यिकों तथा मनीषियों आलोचकों को भी उत्प्रेक्षा के जाल में ऐसा लपेटता है कि उन्हें आगे अपने आप देखना पड़ जाता है कि काव्य सौष्ठय का कितना मनोरम रूप श्री स्वामी जी के पदों में प्राप्त हो सकेगा। उत्प्रेक्षाओं का एक उदाहरण आप देखें–

'सिय जू के गालन पर तिल बिन्दु।
जनु मधु रसिक मरिन्दु ॥
दियो दिठौना बिधि कोउ मानत,
जनु दृग दूषन भिन्दु।
रुद्रहु को जीतन के कारन,
बसो काम जनु रिन्दु ॥
सून्यवाद भा जनु सरनागत,
अस कोउ करत पसिंदु ॥
मृदुता मखमल सम सो कहिये,
लागा जा सिर जिंदु।
याकी मृदुता पर मृदुता है,
होय रही सरमिंदु ॥
या रस को जानै जिन सेयो,
देव चरन अरविन्दु।

का जानिहै दाख रस कपि जेहि,
खाई बन की तिंदु ॥'

रूपकों के धनी श्री स्वामी जी ने श्री किशोरीं जू के शीशफूल के प्रभाव का जो रूपक दिया है वह अन्यत्र दुर्लभ है। मस्तक को सरोवर अलकों को भँवर (लहरें) कमल खिलने के लिए सूर्य के स्थान पर सूर्यवंशी राम के कर का स्पर्श आदि की उद्‌भावना भक्त कवि की सरसता, भाव प्रवणता और तल्लीनता का द्योतक है। आप देखें शीशफूल 'कमल' किस प्रकार खिलता है—

'सिया जू के सीसफूल झल झलकैं।
अष्टदलनि के कनक कमल में हीरा की छबि छलकैं।
जो अपहरत उदित सुकवा छवि चलकन से अति चलकैं॥
सुजश सुगँध सीस सो सरवर भँवर माल जनु अलकैं।
राम दिवाकर कर परसन ते सदा प्रफुल्लित कलकैं॥
सरद चन्द से मुख समीप रहि मोहि लेत सब खलकैं।
जाको सुमिरत संत जनन को संसै भ्रम तम दलकैं॥
वह छवि वह समाज वह जगमग देखि परत नहिं पल कैं।
तीनि ताप मेटवत सो जनु मन देव सरित में हलकैं॥' जा०वि०

श्री जानकी विन्दु का वर्ण्य विषय—

श्री स्वामी जी ने श्री किशोरी जी का इस ग्रंथ में महत्त्व प्रतिपादित् किया है। आपका कहना है कि श्री जानकी रहस्य को जानना उपासक के लिए अत्यंत आवश्यक है। श्री जानकी प्रकृतिरुपा हैं कोटि ब्रह्मांड की जननी हे, बिना उनकी कृपा के प्राप्त किए माया से नहीं निबटा जा सकता। अतः श्रीजानकी रहस्य जानना साधक के लिए आवश्वक है। वह कहते हैं कि श्री जानकी रहस्य अत्यंत दुरुह है—

'श्री जानकी रहस्य अगम अति कैसे कै कोउ जानैगो ।।
भूमि सुता कोउ जनक सुता कोउ, लछमी करि [illegible]नैगो
कल्पित सही कहौं न कहाँ से बीज रुधिर को आनैगो ।।'

यह रहस्य और गहन हो जाता है जब माया तत्व पर विचार करने वाले 'श्री को माया का भेद मानने लगते हैं। यथा—

'विद्या रूप कहैगो कोऊ तदपि नहीं पहचानैगो ।
तहाँ अविद्या मिलिहै तब का दोउ एकै महँ सानैगो ।।'

श्री स्वामी जी कहते हैं कि विद्या माया कैसे 'श्री' का रूप हो सकती है ? वह तो प्रेणात्मक शक्ति होती है। इस विचार से विद्यारूप भी कैसे माना जा सकता है ब्रहमांड जननी के रूप को उसकी उत्पत्ति को ब्रह्मांड वाले कैसे बताये । यथा--

'कोटिन ब्रह्मांडन की जननी, कोउ ऐसो मति ठानैगो ।
माया तक तौ सूत मिला है धुर लौ कैसे तानैगो ।।'

माया तक तो हमारी समझ मे आता है किन्तु 'धुर' तक मूल तक कैसे इस माया तत्व की शरीर से उस 'श्री' का रहस्य जाना जा सकता है ? श्री स्वामी जी 'श्री जानकी रहस्य का समाधान निम्न पंक्तियों में करते हैं। उनका कहना है कि श्रीराम की कृपा से ही 'श्री' जू के रहस्य से जीव परिचित हो सकता है—

'देव मुनिन को जान राम हैं यामैं बेद प्रमानैगो ।
राम जान की जान जानकी का तहँ पतित बखानैगो ।।' जा०वि,

ऐसी हैं 'श्री' जू जिनकी उपासना अत्यंत कृपासाध्य है। 'श्री' जू का सीता नाम श्री उपासना में क्यों ग्रहण किया गया है इस प्रसंग में कृपा साध्य तथा कृपा साधन दोनों हैं इस बात पर

स्वामी जी अधिक ज़ोर देते हैं उपासना में रस का अधिक महत्व उन्होंने माना है। यथा—

'सीता नाम जगत में मंगल श्रुतियन को सरबस है।
सबकी सीमा आप असीमा सी में इतनो रस है॥'

'तारक' शक्ति का होना इष्ट में आवश्यक होता है अन्यथा जीव का निस्तरण कैसे हो सकता है? श्री स्वामी जी का कहना है कि शक्ति की करुणा और 'तारक शक्ति' यह दोनों जीव को शरण में ग्रहण करने के लिए आवश्यक हैं। करुणा तथा 'तारक-शक्ति' जितना श्री जू में हैं अन्यत्र नहीं मिलती। गोस्वामी जी ने 'उद्भवस्थिति संहार कारिणी' लिखकर इसी की व्यंजना की है। यथा—

'तारक अरथ रहो 'ता' पद में यामें का कसमस है॥
सत्ता ईस्वरता औ, तानव त्रिक सीता के बस हैं।
ताते सीता नाम कहत पै माया की घसघस है॥'

इस प्रकार 'माया की घसघस' में से जीव को पृथक करने वाली एक ही शक्ति श्री सीता हैं जिनकी कृपा मात्र से जीव माया मुक्त या जीवनमुक्त होता है। श्री स्वामी जी श्री सीता में एक गुण विशेष पातिव्रत का पाते हैं जिसे भक्ति के लिए आवश्यक मानते हैं। 'सीता' शब्द में दो अक्षर सी' और 'ता' हैं, इनको नागर रेखा जोड़ती है अर्थात् नागर रेखा एकत्व स्थापित करती है तब 'सीता' पद बनता है। श्री स्वामी जी का कहना है जीव इसी नागर रेखा की भाँति अनन्य होकर जब अपने को जोड़ता है अर्थात् जब अपने को पातिव्रत के गुणों से युक्त करता है तब श्री सीता की कृपा प्राप्त करता है। यथा—

'नागर रेखा से सीतापद ऐसी बहुत बहस है।
सती सोई सीता यामें तौ पतिबरता को लस है॥
दीन अधीन देव रस पावै संत मता यह ठस है।
का जानिहैं अहंता जिनके व्यापि रही नस नस है॥' जा० वि०

श्री उपासना मूलतः मानसी उपासना है। अपने अपनत्व को श्री के चरणों में समाहित करके साधक (उपासक) उनके नित्य लीला विहार में अपनत्व को लीन करदे, यही जीव के बस में है। विवाद में पड़ना जीव के लिए घातक है अतः श्री स्वामी जी कहते हैं कि बोलो नहीं बकवाद में न पड़ो अर्थात् दर्शनों की उहापोह में अपने को मत फेंको क्योंकि वह स्वयं उन स्थितियों से गुजरे हुए मालूम पड़ते हैं, अपने अनुभवों के आधार पर वह सामान्य जीवों के लिए यही निष्कर्ष देते हैं कि 'भक्ति' विवाद की वस्तु नहीं है। भक्त को अपने इष्ट की शक्ति में रूप में तथा सेवा में एकाग्र होना चाहिए। क्योंकि—

'बोलत ही गरफाँस परत है जिनि बोलै कछु मुख सों।
ब्रह्म कहत ही जीव खड़ो है, एक कहत दुसरो अकड़ो है,
बोलन हीं में बिकार जड़ो है, रहु संतन के रुख सो॥'

दूसरा कार्य जो भक्त को करना चाहिये वह है 'नाम भजन' नाम जाप पर सभी श्री रामोपसक सन्तों ने बल दिया है। श्री स्वामी जी कहते हैं—

'की रहु मौन कि राम सिया भजु, बाद बिवादन को मारग तजु,
साँच साँच कछु भजन साज सजु, छगन मगन रम सुख सो॥'

वह कहते हैं कि 'नाम गान' से भव दुख से दूर हो जावोगे अतः 'नाम गान' करो 'भजन' का साज सजाओ—

'यद्यपि चूरन खान पान है, हरत अजीरन यह प्रमान है,
तैसे बोलब नाम गान है, दूरि करत भव दुख सो ॥'

संसार के दुःख और व्यवहार के अजीर्ण के लिए श्री सीता राम जी का नाम गान चूर्ण के सदृश है ।

श्री स्वामी जी श्री सीता जू के चरणों का वर्णन करते हैं । श्री किशोरी जू के चरणतल की अरुणिमा ऐसी जैसे अनुरागियों के अन्तर हों । गुलाब, कमल की कोमलता तो कंटीली है, लाल अनार भी तुलनीय नहीं, कुसुम तो जल पड़ते ही रंगहीन हो जाता है । अतएव उससे भी तुलना नहीं की जा सकती, मखमल, सिरीष पुष्प, कलंगी अथवा मालती तथा कपोत के पंख भी ऐसा लगता है कि श्री किशोरी जू के चरणों की कोमलता थोड़ी ही चुरा पाये हैं । श्री किशोरी जी के चरणतल में अंकित उर्ध्व कमल, कल्पतरु, अंकुश तथा रेखायें उज्वल हैं, एक एक रेखा पर त्रिभुवन का श्रृङ्गार निछावर करते हैं श्री स्वामी जू । यह चरण ऐसे हैं जिन्हें धोते हुए देवता डरते हैं कि कहीं इनका सौरभ न चू पड़े, ऐसे हैं चरण श्री जनकराज किशोरी जू के । श्री स्वामी जी योगियों तथा सन्यासियों को ललकार कहते हैं, क्या कहते हैं ? यह आप ही पूछिये । पूछा यदि आपने तो ये कहेंगे—

'जिनके धोवत डरत देवता जिनि चुइ परइ अतरवा ।
इनसे लगन नहीं तो बिरथा दंड कमंडल करवा ॥' जा० बि०

श्री सीता जू के माधुर्य में श्री स्वामी जी ऐसे मग्न हुए हैं कि श्रीराम जी अलग नहीं दिखाई देते । श्री सीता जू के नेत्र वर्णन करते करते उन्हें श्रीराम जी 'श्री' जू के नेत्र के तिल की झांई में दिखाई पड़ गए । 'श्री' जू के नेत्र-तिल की झांई में आप भी देखिए आपको भी श्री राम जू नजर आएँगे । देखिए तो—

'दोउ' अयनन के रवि से दोऊ देव मनुज सुखदाई।
तिल मिस बसे राम दोउ अच्छर तिन्ह ही की जनु झाई॥'

जा० वि०

श्री सीता ज की महानता वर्णन करते हुए श्री स्वामी जी कहते हैं—

'सिया जू रानिन में महरानी, और सबै रौतानी।'

इतना हीं नहीं, कोई ऐसी वैसी महरानी नहीं हैं। यहाँ तो ऐसी स्थिति है कि—

'चितवत भौंह खड़ी करजोरे, इन्द्रानी ब्रह्मानी।
गौरा पान लगावति रचि रचि रमा पवावत आनी॥
आठौं सिद्धि खड़ी कर जोरे नव निधि मनहुं बिकानी॥
कोटिन ब्रह्मांडन की प्रभुता रोम रोम अरुझानी॥

श्री सीता जू जहां इतनी प्रभुता सम्पन्न हैं वहाँ दीन जनों के प्रति शरणागतों के प्रति कितनी दयालु हैं? जहाँ योगी झांक नहीं सकते—

'जो पद जोगिउ झाँकि सकत नहिं करि करि जोग उपाय।
तेहि पद को भूषन बनि बिछुआ औ पैजन झनकाय॥"

वही श्री किशोरी जू ब्रह्मवादियों से भी दूर हैं—

'बालन को भूषित करि राखत अंजन आँखि लगाय।
रहत निरंजन भाव न कबहूं सगुने सगुन देखाय॥'

इस प्रकार हैं श्री किशोरी जू जो 'अगतिन' दीनों पर अत्यंत शीघ्र रीझने वाली हैं। श्री स्वामी जी भरोसे के साथ सशक्त शब्दों में कहते हैं, आप ध्यान तो दें—

'जेहि सरूप में श्रुति की गति नहि अगति रही तहं आय।
इष्ट देवता सिय अगतिन की गाजति डंक बजाय॥
जा० वि०

श्री सीता जू के शरण में अपने आप भेद-भाव, दुख क्लेश, माया मोह छूट जाता है। बिना श्रीजू के कोई रूप क्यों न हो सहायक नहीं होता, भव दुःख नहीं छोड़ते। दीनता के बिना कुछ प्राप्ति नहीं हो सकती अतएव वह श्री किशोरी जू के शरण में भरोसे के साथ आते हैं। एकाग्र समर्पण, एकान्त समर्पण, आत्मसमर्पण हम इसे चाहे जो नाम दें, श्री काष्ठजिह्व स्वामी का यह समर्पण अनोखा और बिनाशर्त का, बिना किसी समझौते का समर्पण है। है। क्या आप भी ऐसा समर्पण कर सकते हैं? समर्पण का रूप देखिए—

१. 'चरन सरन मैं आई, सिय जू को खबर करो।
करम ग्यान वैराग बहाये, इनते कुछ हू सार न पाये,
एक दीनता लये सहाये, सन्तन यही सिखाई॥'

दैन्य आते ही यह प्रभाव हुआ कि—

२. 'अहं भाव को धूप बनायो, मंदिर में मंह मंह महकायो।
दास भाव तन मन में छायो, गुरु अस राह बताई॥'

गुरु की कृपा प्राप्त करके बिना शर्त समर्पण करके भजन अर्थात् अपने इष्ट का सतत् चिन्तन उन्होंने आरंभ किया। तीसरी स्थिति में श्री स्वामी जी का भरोसा और बढ़ा और उनका परिष्कार स्वभावतः होने लगा—

३. 'इद्रिन सो वाही को भजिए, मन को हार अमोलिक सजिए,
छल चतुराई कपट को तजिए, दिढ़ करि गही सिधाई।'

साधक की स्थिति सिधाई आने पर व्यापक हो जाती है। संसार से भेद दृष्टि समाप्त हो जाती है, वही स्थिति श्री स्वामी जी की भी हुई। वह कहते हैं—

४. 'कोई न मेरो बिगार करैया, सब हितकार मातु पितु भैया।
बिनु जाने मैं करौं लड़ैया, देवल मुनि अस गाई ॥

जा० वि०

श्री स्वामी जी महाराज ने श्री सीताराम जी की माधुर्य भक्ति के प्रचार तथा प्रसार के लिए बहुत भ्रमण किया। सन्त जीवन का माधुर्य तथा जीव कल्याण का प्रयत्न उनका सराहनीय है। श्री स्वामी जी ने श्री सीता जू का भजन करते करते श्री मिथिला जी में जाकर अधिक दिन श्री मिथिला बास किया। मिथिला में कहते हैं कि इन्हें अभूतपूर्व अनुभव हुए। श्री किशोरी जू की बाल लीला आपने इसी शरीर से देखा। श्री मिथिला में आपको जो अनुभव हुए। माया तथा मोह से विरक्ति मिली इसे उन्होंने मिथिला जी का प्रभाव माना है और श्री मिथिला जी का ऐसा प्रभाव क्यों है इस संबंध में उनका विश्वास है कि—

'मिथिला विद्या यंत्राकार यह सब तंत्रन की सार।'

जा० वि०

और इसी लिए वह कह गए कि—

'मिथिला को न पावत सात सरग।' जा० वि०

श्री स्वामी जी ने जब श्री मिथिला में ही अवध का परत्व समझा तब काशी आए यहां बहुत दिनों तक रामनगर के दुर्ग में निवास किया और श्री राम जी तथा श्री सीता की आराधना की।

यहां उन्हें सम-दृष्टि श्री भगवान शंकर की कृपा से मिली । तब उन्होंने कहा

'एक परमतत्व कहौं सुनिए करि चाव री ।
मानौ परमान पाय बात छोड़ बावरी ॥
कमला श्री सरजू श्री जनकराय डावरी ।
तीनों में है अभेद या में नाहिं भाँवरी ॥
रामचन्द्र गंडक औ अवध तीनि नावरी ।
इन्हहूं में है अभेद मूरति सोई साँवरी ।
श्रुति पुरान संमत यह नहिं किछु बनावरी ।
मेरे तो इष्टदेव संतन्ह की पांवरी ॥'

ला० बि०

श्री काष्ट जिह्व स्वामी जब इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि समझाने से कोई नहीं समझता । समझेगा वही जिस पर श्री किशोरी जू की कृपा होगी तब वह सोचने लगे--

'देव शरीर पाय कै अब तौ देखिहौं अवध मही ।
बेंचत फिरै कबन दर दर में कहि कै दही दही ॥'

श्री काष्ठ जिह्व स्वामी जी की भाषा पर विचार करके कोई यह अधिकार के साथ नहीं कह सकता कि यह अमुक भाषा भाषी क्षेत्र के रहने वाले थे । हम केवल इतना ही कह सकते हैं कि यह सन्त अलंकार और रस शास्त्र के पूर्ण ज्ञाता तथा काव्य शास्त्र के पारखी विद्वान होते हुए इनकी भाषा भी सशक्त है । आपने हिन्दी-अवधी, ब्रजी, बुन्देली, संस्कृत, मराठी तथा उर्दू भाषाओं में लगभग चालीस के ऊपर ग्रथों की रचना की है ।

श्री देवतीर्थ स्वामी, महाराज ईश्वरी नारायण सिंह जी,

काशीनरेश के गुरुदेव थे। वर्तमान महराज श्री विभूतिनारायण सिंह जी ने सर्वभारतीय काशीराज़न्यास की स्थापना की है और यह न्यास अन्य ग्रन्थों के साथ साथ श्री देवतीर्थ स्वामी के ग्रंथों के प्रकाशन में भी प्रयत्नशील है।

श्री स्वामी जी श्री साम्प्रदाय की रामोपासना शाखा के रसिक दर्शन से प्रभावित होकर श्री सीताराम जी महराज की सेवा में आए। हम न्यास तथा वर्तमान महाराज श्री विभूतिनारायण सिंह जी के उपकृत है जिन्होंने श्री सरस्वती भण्डार में सुरक्षित श्री स्वामी जी के ग्रंथों का दर्शन कराया। श्री काष्ठ जिह्व स्वामी जी महाराज का प्रस्तुत ग्रन्थ श्री जानकी बिन्दु हमारे सम्प्रदाय का उपासना ग्रन्थ तथा श्री उपासना का सिद्धान्त ग्रंथ है। इसके स्वतंत्र तथा सुसंपादित प्रति की अधिक आवश्यकता थी। हमें हर्ष है कि यह अमूल्य ग्रन्थ श्री संस्थान (जो श्री किशोरी जू की कृपा का ही फल है) से प्रथम पुष्प के रूप में प्रकाशित होकर उपासकों अनुरागियों तथा रसिकों को अपनी सुगंध से आकर्षित करेगा।

अन्त में श्री काष्ठजिह्व स्वामी जी महाराज के प्रति मैं नतमस्तक होता हूं जिन्होंने रसिक उपासकों के हितार्थ श्री जानकी विन्दु जैसे महत्वपूर्ण अनेक ग्रंथ दिये हैं। यह भूमिका, प्रकाशन और श्री की जो अनुभूति प्राप्त हुई, सभी 'श्री' की तथा स्वामी जी की अप्रत्यक्ष कृपा का ही फल है।

श्री संस्थान के निर्देशक स्वामी भिक्षुआनन्द, श्री शोध संस्थान के संचालक आचाय पं० पद्मनारायण जी, अध्यक्ष हिन्दी विभाग काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के प्रति क्या आभार प्रदर्शन किया जाय? यह लोग तो 'श्री' के कृपाभाजन सन्त हैं जिनकी सत्

प्रेरणा से ही 'श्री संस्थान' के इतिहास का प्रारम्भ हुआ है। श्री वैदेही बल्लभ शरण जी (हनूमान बाग, अयोध्या) के परिश्रम तथा निष्ठा के प्रति क्या कहें, इतना ही यथेष्ट होगा कि श्री किशोरी जी ने विशेष कृपा द्वारा इनसे श्री जानकी बिन्दु की प्रेस कापी बनवाई, फिर भी श्री संस्थान ने आपकी सहायता को रसिक सन्त के आशीर्वाद के रूप में ग्रहण किया है। रायल प्रेस के स्वामी श्री श्यामलाल जी श्रीवास्तव का प्रयत्न श्लाघनीय है जो अन्यान्य कठिनाइयों के होते हुए भी धैर्य के साथ ग्रन्थ की छपाई में तत्पर रहे। 'श्री' परिवार की ओर से उन्हें धन्यवाद देता हूं। 'श्री' सबका कल्याण करें।

श्री कृपाकांक्षी

वसंत पंचमी २०२३

श्री संस्थान,
डी ५३/४६, लक्सा
वाराणसी

आ० सुरेन्द्र प्रताप एम० ए०
तंत्राचार्य
सम्पादक

पद-क्रम

क्रम संख्या		पृष्ठ
१	मंगला-चरण यह जनक लली को ध्यान है	१
२	श्री जानकी रहस्य अगम	२
३	उपमा नहीं पाय सकौं	३
४	श्री जानकी आदि नामन के	४
५	जानकी नाम मनोहर मीठ	५
६	सीता राम जगत में मंगल	५
७	ब्रह्म बने सिय राम	६
८	बोलत ही गर फांस	७
९	जानकी छवि की मैं बलिहारी	८
१०	कंचन महि मंडल ते	८
११	जनक जब चितई	९
१२	सिय जू को जनम समय	९
१३	करूणा की मूरति यह	१०
१४	क्षीर सिन्धु उगमा तब	१०
१५	झाँगर झाँगर वजत नगारे	११
१६	जनक भवन में लहरत	१२
१७	पुर में चतुर सोहागिन	१३
१८	तरवन की रज विरज करत है	१५
१९	जग मंगल सिय जू के पंद हैं	१५
२०	सिया जू के अरूनारे दोउ तरवा	१६
२१	का वरनैं छवि चरन नखन की	१७
२२	ललित चरन में चारि अंगुलिया	१७
२३	सोहै सिय जू के पायन में विछिया	१८
२४	पद पीठ सिय जू के सुढरन	१९
२५	सिय ऐड़ी निज रंगन लाल	१९

क्रम संख्या		पृष्ठ
२६	सिया जू के पायल बाजे झननन	२०
२७	सिय जू को दोउ कर	२१
२८	मोरे मन बसल सिय जू के कंगना	२१
२९	सिय पहुंचन में रेखा तीन	२२
३०	सिय जू के गर सोहे	२२
३१	हनु जनु धरिया मदन अमियकी	२३
३२	सिय जू के अधरन कीं अरूनाई	२४
३३	सिय जू के मुख जनु पूरन चंद	२४
३४	सिय जू के गालन पर तिल बिन्दु	२५
३५	सिय जू की नाक में छवि छाई	२६
३६	सिय जू की नाक पर वारिय नाक	२७
३७	सिय जू की सुन्दर नाक नथन की	२७
३८	नभ बसत सिय जू के कानन में	२८
३९	सिय जू के कानन में झमकत झुमका	२९
४०	सिय जू की आँखिन में सुरमाई	२९
४१	सिय जू की चितवनि अमिरित बरसत	३०
४२	सिय जू के भाल पर चमकत टीको	३०
४३	सिय जू के सीस फूल झल झलकै	३१
४४	सिय जू को चूड़ामनि दिनकर सो	३२
४५	सिय जू के बिन्दु लसत भालन में	३२
४६	गावत वेद पुरान सिया जू को गहना	३३
४७	सिय जू की छवि मो से कहि नहिं जाय	३३
४८	सिय की छवि कहि जात नहीं	३४
४९	सवही की गति जानकी अनजान जान की	३४
५०	नव रस लसत सिया जू के तन में	३५

क्रम संख्या		पृष्ठ
५१	छवो रितु सिय जू की आँखिन में	३६
५२	सिय जू के अंगन में परम धरम लगि रहा	३६
५३	मनहिं मन कौसिक करत विचार	३७
५४	सुनत गुरू कौसिक को आगवन	३७
५५	जगत के मीतै को प्रभु भजत	३८
५६	रघुबर ताड़ुका तिय मारी	३८
५७	रघुबर मूरति साँवरि है	३८
५८	सिय जनु पदुम जनकपुर सर है	३९
५९	धनुक भंग परसंग मोसे कहि नहिं जाई	३६
६०	धनुष को तोरा काहे राम	४०
६१	भाइहु भल भा धनुष न तोरा	४०
६२	भये पांच विजै धनु के तोरन	४१
६३	आई पांच कुमारी राम बरन	४१
६४	सुनहु श्री सिय विवाह परसंग	४२
६५	बराती भयहु मनहुं रितुराज	४२
६६	नारि सुभग मंडप तर मंगल गावहीं	४३
६७	जयति श्री जानकी राम जोरी	४४
६८	प्रीति अलौकिक राम सिया की	४५
६९	राम दुलह सिय दुलहिन की	४६
७०	जगमग सिय मंडप में मंगल मचि रहयो	४६
७१	अनगढ़ भूषन तन को वयस किसोर है	४८
७२	सिय जू के तरवा लाल सुमंल जगमगे हो	५०
७३	बेंदी अगिन मिस होरी जनु जागि रही है	५४
७४	मंगल के हृदय भई	५५
७५	श्री जानकी विवाह सुनि	५५

क्रम संख्या		पृष्ठ
७६	लखि कौतुक घर में नारी	५६
७७	सिय भई सुभग मदन की बाग	५७
७८	नख सिख सिय अंगन में	५७
७९	मिथिला अवध के हास विलास	५८
८०	सिय जू की सर कर सकत न	५९
८१	सिया जू रानिन में महारानी	६०
८२	सिय जू विहरत श्री बन में	६०
८३	श्री बन मनही मन में भावत	६१
८४	सिय जू को रमन श्री बन में	६१
८५	सिय जू में दीन बन्धुता पाई	६२
८६	सिय जू को ललित नहीं कहि जाय	६३
८७	सिय जू की करूना लखि नहिं जाय	६३
८८	छविले तेरी छवि पैं	६४
८९	राम हिंडोले झूलत	६५
९०	श्री सिय जू की समता पावन	६५
९१	सावन बरसि रहा है झम झम	६६
९२	देखो राम बने जनु सावन	६७
९३	मदन महीपति पाय सावन में	६७
९४	अवध बाग जस नन्दन	६८
९५	भले दोउ लालहि लाल लसे	६९
९६	आजु दोउ झुलत रंग हरे	७०
९७	ललित अति कुन्जन की घन घटा	७०
९८	महके सिय अंग वसंत सोई	७१
९९	झलकि रहे छवो रितुनके साज	७१
१००	सिया राम सिंगार	७२

क्रम संख्या		पृष्ठ
१०१	दसरथ नन्दन जनक नन्दिनी	७३
१०२	लाल लली दोउ चतुरी	७३
१०३	ऐसी देखी सुनी नहीं होरी	७४
१०४	छवो रितु दमकत हैं	७४
१०५	मेरे नितहीं रहै होरी	७५
१०६	मिथिला विद्या जंत्राकार	७५
१०७	मिथिला को न पावत सात सरग	७६
१०८	मिथिला पावन तिनिउ काल	७७
१०९	सरद सी मिथिला होय रही	७८
११०	तिन संतन की बलिहारी	७८
१११	एक परम तत्व कहों	७९
११२	मिथिला अवध हैं दोउ समान	७९
११३	मन की मनही माह रही	८०
११४	काहु न हमारी सुरति कराई	८१
११५	सिय जू के चरन सरन होहु	८१
११६	सिय जू की महिमा को पटतर	८२
११७	अब सिय जू के सरन भये	८३
११८	चरन सरन मैं आई	८३
११९	अब तो दास भये हैं खासे	८४
१२०	वा छवि कब मन में बसेगी	८५
१२१	सिय जू की पायन की सुधा	८५
१२२	मेरो कहाँ अस भाग	८६
१२३	वारह मासन के धरमन से	८७
१२४	सब फूलन के भँवर जुठारे	८९
१२५	सिय जू को टहल में मैं रहि हौ	८९

क्रम संख्या

१२६ बाज आई मैं तेरी यारी से
१२७ नाचन को साज सजावोंगी
१२८ लड़िली खड़ी हैं कञ्चन गोरी
१२९ रहो मति ऐहि परत
१३० बहुत मोहि संतन कह्यो बुझाय
१३१ नाद बिन्दु सीताराम
१३२ वसौ यह सिय रघुबर को ध्यान
१३३ राम पर बारौं या धन श्याम
१३४ राम में छवो रसन की छटा
१३५ रसिलीं प्रभु की मुरति

श्री यंत्र (श्री वैष्णव यंत्र)

श्री सीताराम जी के तांत्रिक स्वरूप का यंत्र, इसका उपयोग
श्री भक्ति तंत्र में, दुरूह कार्यों में तथा ध्यान सिद्धि के लिए होता है।

अनन्त श्री विभूषित श्री काष्ठजिह्व स्वामी (श्री देवतीर्थ स्वामी)
एवं श्री युगल सरकार

श्री सीतारामाभ्यां नमः

श्री रामानन्दाचार्याय नमः

मंगलाचरण

यह जनक लली को ध्यान है।

राम उपासक सुचि संतन को सर्वसु जीवन प्रान है॥

कंचन रचित सुभग भद्रासन[1] मोतिन की लहरान है।

तापर बैठी चन्द्र जोति सी आनन चन्द्र सकान है॥

लाल चरन तल लालै करतल लालबसन परिधान है।

अंग अंग लखि परत मनोहर भूषन की झमकान है॥

दोउ कर कमलन कमल बिराजत सखी खवावत पान है।

चवँर दुरत गृह मह मह मँहकत बाजत देव निसान है॥

१—यह आसन स्वर्ण का है जिसमें आठ दल कमल ऊपर बना है जिस पर श्री जानकी जू बैठी हैं आठ दल नीचे की ओर खुले हुए हैं। मोतियों की झालरें मखमली नील आसन से चारों ओर लटक रही हैं।

श्री जानकी तत्व

(राग-होरी, ताल-काफी)

श्री जानकी रहस्य अगम अति कैसे कै कोउ जानैगो ॥
भूमि सुता कोउ जनक सुता कोउ कोउ लक्ष्मी करि मानैगो ।
कल्पित सही कहौं न कहाँ से बीज रुधिर को आनैगो ॥
विद्या[1] रूप कहैगो कोऊ तदपि नहीं पहिचानैगो ।
तहाँ अविद्या मिलिहै तब का दोउ एकै महँ सानैगो[2] ॥
कोटिन वरम्हांडन की जननी कोउ ऐसो मति ठानैगो ।
माया तत कौ सूत मिला है धूरि लौं कैसे तानैगो ॥
देव मुनिन की जान राम हैं यामैं बेद प्रमानैगो ।
राम जानकी जान जानकी का तेहि पतित बखानैगो ॥१॥

१—विद्या माया—श्री राम अथवा ब्रह्म की माया जो ईश्वर भक्तों को श्री रामकी ओर प्रेरित करती है ।

२—विद्या तथा अविद्या दोनों ही माया हैं —विद्या तथा अविद्या माया दोनों ही सांसारिक आकर्षण करती हैं । ब्रह्मवादियों ने विद्या माया को ब्रह्म की माया माना है । कुछ लोगों ने विद्या माया को सीता-राधा तथा लक्ष्मी के रूप में माना है पर श्री सम्प्रदाय के आचार्यों ने —सीता को श्री राम की 'परमशक्ति' कहा है माया नहीं । माया ब्रह्म के बशीभूत रहती है और शक्ति के आधीन ब्रह्म स्वयं रहता है ।

॥ राग भैरव ॥

उपमा नहिं पाय सकौं सियाजू की छवि की ।
वरनि सकै ऐसी मति कहौ कौन कवि की ॥
लक्ष्मी में मद निवास दामिनि को छनिक भास
चंदा में रवि प्रकास खरता अति रवि की ।
कंचन में नहिं सुबास दीपक दिन में उदास
कहि न जात समत रास सिंहिनि औ अबि[1] की ॥
जोति रूप जाहि कहत घट घट में जौन रहत
महावाक जाहि महत खानि जीव झवि[2] की ।
सोऊ एक भाव भेद सियाजू को कहत बेद
महाभाव से उमेद बड़ी बड़ी चबि[3] की ॥
जगत को सरूप देह जा पर सब को सनेह
याही में दार गेह फांसी अनजबि[4] की ।
बिदेहन की जान माल बैदेही पद रसाल
कैसे कै मिलै चाल अद्भुत या फवि की ॥
सो सिव सिय नाम रटत तैसोइ ठाट ठटत
डंक देइ मजा पटत बानः नहिं दबि की ॥२॥

१—हाथी-गजचाल से अर्थ हैं—श्री सीताजू की कटि सिंहिनी के समान कैसे कही जा सकती हैं जब वे गज गामिनी हैं । तात्पर्य यह कि उपमा कैसे दी जाय : यहाँ सद्धर्म उपमा नहीं घटती । २—असंख्य जीवों का झमेला । ३—बातों की बड़ी बड़ी वातें सुनने में आती हैं । ४—अजनबी की अवधी—अक्षर बिपयर्य ।

नामार्थ

॥ होरी काफी ॥

श्री जानकी आदि नामन के अरथ रमत मेरे मन में।
काल[1] सुभाव[2] करम[3] गुन[4] चारिउ जगत जनक जाहिर जग जनमें।
तिन की जान जानकी ताते गाई बेद पुरानन में॥
श्रुति को मथित सार सो मिथिला प्रगट भई तेहि वसुधन में।
सोई मैथिली झलकि रही है जोगि जनन के ध्यानन में॥
जीवन मुक्त[5] बिदेह दसा से जे बिहरत गहिरे बन में।
तिन को परम तत्व बैदेही जिनि भूलहु बकवादन में॥
जो जानकी सोई बैदेही सोई मैथिली जानन में।
एक अनेक भांति से गाई नदी जस लोकन में ॥३॥

१—काल—श्री जानकी जी का समय जब अवतीर्ण हुईं। २—सुभाव—उद्भवस्थिति संहारकारीणीम्। ३—करम—करुणामयी जीवों के प्रति क्षमापूर्ण कर्तव्य करने वाली 'क्लेशहारिणीम्'। ४—गुन—सर्वश्रेयसकरीं—सब जीवों को श्रेय देने वाले गुणों से युक्त। ५— शरीर रहते हुए भी जिसे शरीर के बंधन व्यथित न करें।

श्री जानकी नाम महत्व

॥ खम्माच ॥

जानकी नाम मनोहर मीठ ।
जापक जन सुखदायक सीधो जनु सिद्धिन को पीठ[1] ॥
महावरहु को करत रंगीलो जैसे रंग मंजीठ[2] ।
रसना पर आवत जनु आयो सिय दरसन को चीठ[3] ॥
जाके मनन गुनन ते झलकत अन्दर निरमल डीठ ।
बरबस काल फाँस ते छोरत बड़ो जवर[4] बड़ ढ़ीठ ॥
अन्दर बाहर को मल सोधत जस अंबर[5] को रीठ[6] ।
जाके रस के आगे लागत देव सुधा हूं सीठ[7] ॥४॥

★ ★ ★

सीता नाम जगत में मंगल श्रुतियन को सरबस है ।
सबकी सीमा आप असीमा सी में इतनो रस है ।
तारक[1] अर्थ रहो ता पद में या में का कसमस[2] है ॥

१—पीठ-स्थान, मठ । २-मंजीठ-एक प्रकार का फल जिससे महावर बनाया जाता है । ३—चीठ-चीटीं । ४—जबर-शक्तिशाली (अ०) ५—अंबर- कपड़ा । ६ – रीठ–रीठो-वह फल जिससे कपड़े धोये जाते हैं । ७—सीठ- फीका ।

१—तारक-तारने वाला-संसार के कष्टों को दूर करने वाला ।
२—कसमस-संदेह

सत्ता[3] ईश्वरता[4] औ तानव[5] त्रिक सीता के बस है।
ताते सीता नाम कहत पै माया की घस-घस[6] है ॥
नागर[7] रेखा से सीता पद ऐसी बहुत बहस है।
सती सोई सीता या में तौ पतिवरता को लस है ॥
दीन अधीन देव रस पावै संत मता यह ठस है।
का जानिहैं अहंता जिनके व्यापि रही नस-नस है ॥५॥

★ ★ ★

॥ खम्माच ॥

ब्रह्म बने सियराम भजत नहिं धृग-धृग तिनके जीवन को।
जिनके कहावत ते तो चाहत नित नाम पीयूष पियन को।
साग पात पितु पूत परोरा[1] यह सम्मत नोनियन को ॥
मुक्तहु भजत हेतु बिनु हरि को यह मति किन सुधियन को।
राग द्वेष साधन से चाहत मान गुदरिया सीयन को ॥

३–सत्ता–आधिपत्य। ४–ईस्वरता–भगवत गुणों से युक्त। ५–तानव–जीवत्व। ६ - घसघस–घिसाई फंदा। ७—नागररेखा–नागरीलिपि में ऊपर अक्षरों को मिलाने के लिए जो दी जाती हैं। सीता में 'सईता' सीता सीता-सत्ता ईश्वरता तथा तानव का मेल। ८—अहंता– अहं भाव–अपनी बुद्धि को बड़ी मानने वाले।

नोट :—ब्रह्मवादियो को इस पद में महाराज ने तर्क देकर सीताराम को भजने को कहा है।

१–जिस प्रकार नोनियाँ जाति अपनी वात छोड़कर किसी की नहीं मानती वैसे ही बिना आधार के ब्रह्मवादी 'अद्वैत' प्रतिपादित करता है।

ब्रह्म-ज्ञान[२] से परे भक्ति है सुनु गीता सखियन को।
राम सनेह ग्यान[३] को जीवन जैसे तेल दियन को॥
द्वैत सदा अद्वैत कबहुँ नहिं पूछहु देव मियन[४] को।
या पूछहु तुम जागत सोवत अपने-अपने हीयन को॥६॥

★ ★ ★

❋ काफी ❋

बोलत ही गर फांस परत है जिन बोलै कछु मुख से।
ब्रह्म कहत ही जीव खड़ो है एक कहत दुसरो अकड़ो है।
बोलन ही में बिकार जड़ो है रहु संतन के रुख से॥
की रहु मौन कि राम सिया भजु बाद विवादन को मारग तजु।
साँच साँच कुछ भजन साज सजु छगन मगन रम सुख से॥
यद्यपि चूरन खान पान है हरत अजीरन यह प्रमान है।
तैसे बोलब नाम गान है दूरि करत भव दुख से॥
बकबादिन को संग न करिये उनके रंग में भंग में न करिये।
देव रंग को नंगन करिये क्या मतलब है सुख से॥७॥

२—ब्रह्म ग्यान-ब्रह्म संबन्धी ज्ञान जहां एकमात्र ज्ञान होता है केवल एक पक्ष होते हुए भी दूसरे पक्ष की आवश्यकता होती है। ३—सनेह-ग्यान—भक्ति के अन्तर्गत ज्ञान क्रिया और इच्छाशक्ति के साथ होता है। ४—मियन- सूफियों से।

नोट :—ब्रह्म जीव को लेकर विवाद करने का अवसर नहीं। श्री सीताराम जी का भजन करना श्रेयस्कर है।

॥ श्री जानकी विन्दु ॥

अति प्रसन्न चारु बदन मन ही मन पगी है।
संतन की इष्टदेव मनहुँ मात सगी है ॥९॥

❋ धनाश्री ❋

जनक जब चितई वा छवि को।
याके आगे लघु करि जाने कोटिन ससि रवि को ॥
देखी सुनी सक्ति हम लाखन पाय सकत को या फवि[1]को।
याके जोग पुरुष को मिलिहैं ब्रह्म रहत दबि को ॥
कन्या बोली आउ जनक मोहि लइ चलु गृह भवि[2] को।
सुनि अनंद जो भयो जनक को सो अलखित कबि को ॥
गोद लेइ नृप गये भवन महँ दई रानी नबि[3]को।
हरष भये ब्रह्मादि देवता पावत निज हबि को ॥१०॥

★ ★ ★

सियजू के जनम समै जग अनन्द मई है।
अंबर[1] में अनहद धुनि जयति जयति छई है ॥
बरसत सुर सुमन जहाँ जन्म भूमि थई[2] है।
महमहात जनु तहां सुगन्ध बेलि बई[3] है ॥
नीर भये मधुर मनहुं सुधा घोरि दई है।
पावन अति पवन भयो तेजन छवि लई है ॥

१—फवि-शोभित शोभा। २—भवि-भव्य। ३—नबि-नम्र।
१—अंबर-आकाश। २—थई-थली-स्थान। ३—बई-बोई।

साधन बिनु मलिन मनहुं पाई बिमलई[४] है।
देवन के भाग खुले बाढ़त प्रीति नई है ॥११॥

करुना की मूरति यह बाल दसा बनी है।
जाहि देखि कूरहूं[१] को परम प्रीति जनी है॥
सबही सो प्रेम नहीं कतहुँ दुसमनी[२] है।
बालक सो परमहंस बेदन अस भनी है॥
कानन में बाला जहँ जगमगात मनी है।
जनकराय बाला यह बालन की धनी है॥
बाला यहि नामहिं में तीनि डोर तनी है[३]।
देव दृष्टि से बिचार भली बात छनी है ॥१२॥

क्षीर सिन्धु उमगा तब मातु के थनन[१] में।
फैली यह बात सुभग पुर में औ जनन में॥
सातधार निसरि परी कन्या के अनन में।
तृपित होत कन्या यह रोम रोम तनन में॥
रुचि से व्यवहार बने छठी आदि गनन में।
मोदे[२] सनमान किये राम बहुत धनन में॥

४—बिमलई-विमलता।

१—कूरहूँ-क्रूर, कठोर को भी। २—दुश्मनी-वैमनस्यता, बैर
३—सीता में सत्ता, ईश्वरता एवं तानव तीनों का समन्वय मिलता है
सत्ता से ब्रह्म से और जीव से तीनों से संबंध है।

१—थनन-स्तनों में। २—मोदे-प्रसन्न होकर।

का जप तप जोग करहु बैठि बैठि बनन में।
देव सुधा चीखि भजहु भूलेहु जिनि कनन में ॥१३॥

★ ★ ★

॥ होरी काफी ॥

झाँगर झाँगर बजत नगारे।
जनकराज महराज के द्वारे ॥

बड़ी दून की परन झरन लगि धमकत सागर मनहुँ डकारे[1]।
झालर[2] सनी बीच बीच झहरत तुरहिन के ऊँचे तुतुकारे ॥
राग भरी बोलत सहनाई नचत नटी[3] गावत ललकारे।
बीन मृदंग आदि सब लहरत अपनी अपनी ढरन[4] सुधारे ॥
जात-करम[5] विधि होन लगी है विप्रन सुन्दर मंत्र उचारे।
दान दिये कहँ तक को बरनै बरसि रहे जहँ तहँ दीनारें[6] ॥
जाचक धुनि औ नगर कोलाहल बन्दिन की धुनि बहुत पियारे।
धुनि समुद्र मानहुँ तहँ उमड़ेउ नभ में देवन के धुधुकारे ॥१४॥

१—डकारे-उच्छ्वास लेता है। २—झालर-झाँझ। ३—नटी-नर्तकी। ४—ढरन-ताल। ५—जात करम-छठी-छठें दिन का संस्कार। ६—दीनारें-अकबर कालीन स्वर्ण मुद्रा।

॥ सोहर ॥

जनक भवन में लहरत झिलमिल बोहर[1] हो।
उठत मनोहर सोहर ई दिन नोहर[2] हो॥
यह कन्या औतरलि महा सुख सागर हो।
राउ जनक कर भैलैं बंस उजागर हो॥

सिद्ध पीठ यह मिथिला रही पै अलख[3] रही।
अब भइ सोई उजागर जानेसि खलक[4] सही॥
मिथिला की महिमा पर सिवजी की मोहर है।
जो साधारन जानिहि सो नर छोहर[5] है॥

त्रिभुवन की जननिहुं के जनक जनक भये।
अब तो जनक यह नाम जथारथ मिलि गये॥
जो पद ग्यानी न पावत साधत कल्प गयो।
सो पद सिय पद आवत पद पद सुलभ भयो॥

जेहि छिन सिय औतार जनकपुर लसि परयौ।
रावन तिय सिर भूषन तेहि छिन खसि परयौ॥
जनक भवन में सारद पूनो नित्त रहे।
नित्त देवारी मंगल श्री जहां आपु अहै॥१५॥

१—बोहर—बन्दनवार। २—नोहर—शुभ घड़ी बहुत प्रतीक्षा के बाद।
३—अलख—अनजान। ४—खलक—दुनियां। ५—छोहर—नीच।

पुर में चतुर सोहागिन हिलमिल चरचत[1] है।
सिय जू के नख सिख लच्छन कहि गुन फरचत[2] है॥
पद अँगुठा तर अंबर अरसी[3] मनहुँ लगी।
कनक रेख सी तामें चहुं दिसि जोति जगी॥
ऊरध रेख तरवन में सिय के अखंडित है।
ऊरध गति तरवन के बल जनु मंडित है॥
अंगुठा अंगुरी मध्य रतिउ[4] अंतर नहीं।
भूमिउ ते अनि सांत दया जंतर सही॥
हृदय कमल पर लाल अंक अति झमकि रहा।
हिय अनुराग उमग जनु बाहर दमकि रहा॥
लाल करतलन मध्य कमल के अंक लसै।
दच्छिन बाम दोउन पर हित के भाव बसै॥
कमलन में निसि मुद्रन ससि में अंक रहै।
सिय मुख नित्त प्रसन्न कैसे इन सम कहै॥
कंचन तन बिन रोम तेज जस तम बिना।
बालन ही पर तम जनु एकठौ होइ भिना॥
अरध चन्द सम भाल सियाजू को सोहत है।
तामें झलकत जोति जगत मन मोहत है॥

१—चरचत-वर्णन करते हैं। २—फरचत—पवित्र करते हैं।
३—अरसी – आरसी—दर्पण। ४—रतिउ-रत्ती भर भी।

भौंह भई दोउ धनु सम सायक नैन हैं।
लच्छ[5] भयो श्रुति मूल यही गुर सैन हैं॥
भीतर ते ते बाहर सम सिय कान हैं।
तहां कनक मनि कुंडल की झलकान हैं॥
मेरु दंड कहँ नापत चोटी ललित बनी।
चूड़ामनि तहँ झलकत मानहुँ तेज-धनी॥
कहन सुनन की जदपि जनक की डाबरि[6] हैं।
रोम रोम प्रति याके जग नेवछावरि हैं॥
नरिअर में जस अमिरित आवत मूल से।
सिय जू सब कर मूल न जानहु भूल से॥
मेरो दिढ़मति एतनो सकहि को फेरि हैं।
बिना मूल सिय जू की हम सब चेरि हैं॥
देवल देवल खोजब घट घट सीय हैं।
सब जीवन को सियजू एकै जीय हैं॥१६॥

★ ★ ★

५—लच्छ-आकाश। ६—डाबरि-कन्या।

सभूषण अंग वर्णन

॥ खम्माच ॥

तरवन की रज बिरज[1] करत है।
हरत तमहुँ को जस दरपन मल रज परसतहीं निसरि परत है॥
का पराग का जग्यन को रज का तीरथ रज सुफल फरत है।
पर सत्ता सरुप यह पद रज[2] त्रिविध ताप सब दोष हरत है॥
राज तजत जेहि कारन राजा कोउ मसान भभूत धरत है।
तउ वा रज को परस न पावत बार बार जनमत औ मरत है॥
अहंकार को दास दास करि पाय वही रज सुख बिचरत है।
छोड़ि देव तरिवर हूँ[3] दुर्लभ सियाराम को जस उचरत है॥१७॥

★ ★ ★

जग मंगल सिय जू के पद हैं।
जस तिरकोन यंत्र मंगल के अस तरवन[1] के कद हैं॥
मलहिं गुलाबहिं जे तन मन के जिनकी अटल बिरद हैं।
मंगलहूँ के मंगल हरि जहँ सदा बसे ये हद हैं॥

१—बिरज-निर्मल। २—परम सत्ता की छाया इस रज में है।
३—तरिवरहुँ-कल्पवृक्ष को भी।
१—तरवन-तलवा, चरन का निचला भाग।

ऊपर गौर राजहंसन से मोती नखर[2] अदद[3] है।
पदुम मनहुं भोगी, मानस के मधुलिह[4] बिगलित[5] मद हैं॥
काल सरप से डसे जीव जे विषय निरत बड़ बद[6] हैं।
देव सुधा सम बिन अमिरित ही संजीवन औषद हैं॥१८॥

★ ★ ★

सिया जू के अरुनारे दोउ तरवा मानहुं अनुरागिन के घरवा॥
का गुलाब का कमल कँटीलो का बड़ लाल अनरवा।
का कुसुंम जल बुन्द परत हीं बिगरत रंग निचोरवा॥
का मखमल का सिरिस कलंगी का मालती पतरवा[1]।
इनकी कोमलता के आगे का कपोत[2] बटपरवा[3]॥
ऊरध पदुम कलपतरु अंकुस रेखन को उजिअरवा।
एक एक रेखन पर बारों त्रिभुवन को सिगरवा॥
जिनके धोवत डरत देवता जिनि चुइ परइ अतरवा।
इन से लगन नहीं तो बिरथा दंड कमन्डल करवा[4]॥१९॥

२—नखर-नखों पर। ३—अदद-संख्या। ४—मधुलिह-मधुलेकर।
५—बिगलित-चूर। ६—बद-दुराग्रही।

१—पतरवा-पतला। २—कपोत-कबूतर। ३—बटपरवा-ठग।
४—करवा-संतो के भोजन करने का मिट्टी का पात्र।

का बरनौं छबि चरन नखन की।
चिक्कन गोल अरुन दुतिवारे एक एक से अकथ अँखन[1] की
[2]दीन मधुरता सम दम दिढ़ ब्रत भीर लगी जनु राज सखन की॥
[3]मोदादिक पांचो जनु सिमिटे आसा पद को सार चखन की।
[4]पद्धति सुगम सुढ़ार बनो है मानहुं राम सरुप लखन की॥
[5]अगुठा ललित बिन्दु माधव तहँ पंच नदी जनु उरज पखन की।
[6]नख रेखा की छांह पाइ कै जोति जगी सोमादि मखन की॥
नखन नखन पर ताकि इहां रस छोड़ु दुरासा बाम भखन की।
नख सनेह बिनु देव दोहाई सब बातैं परिनाम झखन की॥२०॥

★ ★ ★

ललित चरन में चारि अँगुरिया।
काम धेनु जनु चार थनन की सुथल बैठि कै करत पगुरिया।
चार बेद के चार फलन की सरस रंगीली मनहुँ कंगुरिया॥

१—अँखन-आँखों के लिए अकथनीय है। २—दीनता, माधुर्य, सम, दम, और दृढ़ता नखों में शोभित हो रही है। ३—प्रसन्नता धैर्य्य,विनय, शील और शरणागति चरणों के नखों में सिमट आए हैं। ४—अँगुलियों की बड़ाई छोटाई के साथ नख भी क्रमशः वैसे ही हैं जैसे श्री राम भरत, लक्ष्मण एवं शत्रुहन है। ५—अँगूठा अक्षय बट है और पंच देव सरितायें गंगा, यमुना, सरस्वती, सरयू और कमला एकत्र हो गई हैं। ६—सोम आदि पाँच प्रकार के अमृत नखों की छाया मात्र हैं।

[1]अँगुठा मूल मंत्र सो जामें नाद विंदु की लसत भंगुरिया।
[2]जाको फेर पाँच अँगुर को सो पद नापनि तिगुन भंगुरिया॥
[3]तीन परब में तीन कांड तहँ मूल रहस्य अलच्छ ठगुरिया।
ग्रंथि विराजत बसीकरन की मानहुँ प्रेम सजीवन गुरिया॥
तरे तरत तरिहहिं बहु तेरे भइ सरनागत दीन पँगुरिया।
देव दोहाई माँझ धार में बूड़ैंगे पद बिमुख मगुरिया[4] ॥२१॥

* कहरवा *

सोहै सिय जू के पायन में बिछिया[1]।
बीछी[2] अस ताते यह बिछिया ऊपर आरन की तिछिया॥
ढू ँढू ँते गज कुंभ जनावहिं मद चुअन सुलाखन से बिछिया॥
[3]भंवर गुंज मद की संगी है छननं छनन धुनि बिछिया॥
देव बिमुख यह रस का जनि है लागि जिनहिं तनधन हिछिया[4] ॥२२

१—अँगूठा राज मंत्र है जिसमें नाद बिन्दु अर्थात् बीज मत्र का अनवट (अंगूठे में पहनने वाला जेवर पड़ा है)। २—पांच गुणों से युक्त अंगूठा सत् राजस और तम गुणों का जो भौतिक हैं नहीं के बराबर समझता है। ३—इस अगूठे का रहस्य वही जान सकता है जो तीन शरीर—स्थूल, सूक्ष्म और कारण तथा त्रिगुण—रज, तम, सत से ऊँचे उठकर भावना में तीसरे आवरण की तीसरी लीला देखने का अधिकारी होगा। ४—मगुरिया-हाथ पर हाथ धर कर बैठने वाले।

१—विछिया-पैर की अंगुली में पहनने वाला आभूषण। २—बीछी-वृश्चिकः। ३—विछिया के घुँघरुओं की इतनी मधुर ध्वनि है कि भँवरे के गुंजन मद को भी हरण करने वाली है। ४-हिछिया-इच्छाएँ लिप्सा।

पद पीठ सिया जू के सुढ़रन[1] ।

जामें डोर[2] लगी पांचन की कूरूम से महि थंभ करन ॥
अति कोमल अति कठिन कुलिसजनु बीच ग्रंथि मंडल अटरन[3] ।
दोय ग्रंथि बड़ि लघु दोउ बाजुन तेऊ अलख श्रम खेद हरन ॥
चिक्कन ऊँचो ढार रोम बिनु जोति प्रकासन असरन सरन ।
ऊपर रेखा त्रय[4] को मंडल जाते बनि न सकत बिछुरन ॥
इन साजन से गति मारुत तहँ अचल रहत सोकत अभरन ।
देव दृष्टि से यह रस लखि कै पतितहु को तब होय तरन ॥२३॥

★ ★ ★

सिय एँड़ी निज रंगन लाल ।

जनु अनुराग[1] रूप धरि आयो पद रस जानि रसाल ॥
फीके परत बुंद के परतै जावक कुसुम गुलाल ।
जल से धोवत दूनो झलकत याको रंग कमाल[2] ॥

१—सुढरन-सुडौल । २—डोर-बिछियों और अनवट से बँधी मनिमय डोरी मंडल तक लगी है । ३—चरण पीठ पर पाँच डोरियां बीच में मंडल चन्द्र से बँधी हैं । ४—पायजेब पहनने वाले स्थान पर तीन मंडल रेखाएँ हैं – ।

१ –आशा + अभिलाषा + आत्म समर्पण । २—कमाल-अकथनीय ।

सिरिसो मखमल केहि गिनती में यह बड़ि मेंही खाल।
भूपि धरत रस चुअन चहत जनु अस सखियन को साल॥
ऊपर चारि रेख युत[3] एँड़ी कमल कली के मिसाल।
जनु सोहाग सिंगार देव को संतन्ह करति निहाल॥२४॥

॥ सोरठा कहरवा ॥

सियाजू को पायल बाजै झननं, भँवर गुंज सो भननं।
कंचन को कोरन पर मनि गन पाय पीठ से सननं॥
लगे सैकरन दाने तर पर बजत मधुर धुनि रननं।
सियजू के चरन कमल रस दुर्लभ साधिहुं कैं श्रुति मननं॥
एहि कारन मुनि मन जनु अलि बनि रस चाखत बिनु खननं[1]।
कबहूं रुन झुन कबहूं किन किन कबहूं बोलत छननं॥
इन्ह धुनियन को भाव बिचारत छुटत मरन औ जननं।
मूल मंत्र[2] या धुनि से प्रगटा जासे ताना[3] तननं॥
महादेव[4] या धुनि में मगन नित मृत्युञ्जय पद ठननं॥२५॥

३—चारिरेख चार रेखाएँ जो धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष को देने वाली होती है सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार।

१—खननं—बिना तर्क बुद्धि के। २—मूलमंत्र—मूल मंत्र राज के बीज ध्वनि से तीन नाद उत्पन्न होते हैं—श्री सीता जी के मूल 'किन किन' श्री राम जी के मूल से 'रुनझुन' और दोनों के सम्मिलित बीज मूल से छननं' ३—सृष्टि ४—भगवान शंकर इस रहस्य को जानते हैं इसी से उन्होंने मृत्यु को जीत लिया है।

सियजू को दोउ कर पदुम समान।
अबहि महावर से जनु रंगे रहा रंग चुचुहान॥
दोउ हाथन में पंकज महकत भवरन की झुमरान।
छत्र कमल सिंहासन करतल रेखन की लहरान[1]॥
पातरि सटी अँगुरिया चारिउ कमल दलन के मान।
एक चक्र पर देखि बखानै जाको नहिं उपमान॥
पंच-कोन[2] को यत्र मानहुँ कर प्रेम सोहाग निधान।
महादेव को जीवन सोई देत अभय बरदान ॥२६॥

॥ कहरवा ॥

मोरे मन बसल सियाजु कै कंगना।
कंचन को पचरंग जड़ित मनि अभरन माँह कइउ रंग रंगना।
लाल पीत सित नील विचित्रित बरषा में जनु सांझि[1] पतंगना॥
गोल गोल कोरन में मोती कमल निकट जनु बाल विहंगना[2]।
कील जड़े कंचन के जेहि ते परि न सकै भागन में भँगना॥
खेलत दुइ रवि मंडल मानहुँ नरम कलैया लहि कै गँगना।
कर पदुमन को नित विकसावन कारन धरे मनहुँ भल रँगना॥
देव राज पद को को चाहत को चाहत तरिबर में टँगना।
श्री जानकी चरन पंकज में मन रँगो एतनै बर मँगना ॥२७॥

१—हस्तरेखा ऐसी स्पष्ट है कि उसमें क्षत्र, कमल और सिंहासन क्रमशः वृहस्पति सूर्य और मंगल के स्थान पर हैं। २—हथेली पंचकोण के मंत्र के समान है। पंचकोण मंत्र श्री तंत्र में सौभाग्य बृद्धि के लिए प्रयुक्त हुआ है।

१—सांझि पतंग-जुगुनू। २—हँसों के बच्चे।

॥ खम्माच ॥

सिय पहुँचन में रेखा तीन[1] ।
जिन में लघु लघु जब[2] बीने तनिको कतहुँ न छीन ।
तीन लोक की सकल संपदा करगत यह न नवीन ॥
तिन के निकट लाल करतल में राजत उलटो मीन[3] ।
दानि सिरोमनि सिय अस बोलत परिखत कोउ परवीन ॥
छपी ग्रंथि[4] जस प्रेम पिया सो गोल ढार दिढ़ पीन ।
कमल नाल बंधन से बंधन की कस अंतर लीन ॥
जहां आप कर देत सिया बर का लखि सकिहि मलीन ।
देव दृष्टि से अहंकार तजि होय रहिये कछु दीन ॥२८॥

॥ कहरवा ॥

सिय जू के गर सोहै मोतिन को हरवा ।
जामें विमल गुनन से पोहे झलमलात मुकुतन के लरवा ॥
लहरत गंग तरंग माल सें पाय सुगम जनु रतन पहरवा[1] ।
आदि अंत से रहित ग्रंथि बिनु सुधा[2] मिलन को मनहुँ डहरवा॥

१—धर्म, अर्थ, काम, इन तीनों फलों को देने वाली हैं । २—ऋद्धि का प्रतीक हस्तरेखा विज्ञान में यव लक्षण माना गया है—श्री सीता जी ऋद्धि दात्री हैं । ३—उलटा मीन-दानी का लक्षण है । ४—पति स्थान पर दृढ़ और प्रगाढ़ प्रेम को लक्षण स्वरूप ग्रन्थि रेखा है यह रेखा कमल नाल के समान हैं—ऐसी पत्नी का पति सर्वेश्वर होता है ।

१—पहाड़-गंगा मानो गला रूपी कंचन पहाड़ से दो धारों में निकली हैं । २—सुधा स्थान-अर्थात् नाभि की ओर लटकती है ।

गरन बीच अंतर जनु सोहत प्रेम धार आवन को नहरवा ।
मिले परसपर कतहुं न अंतर दानन के जनु बसेउ सहरवा ॥
मुक्ति परी जनु गरे सिया के अनत न देखेनि कतहुं ठहरवा ।
सियाराम अस देव न देवी यह जानिहि कोउ संभु महरवा ॥
इन के चरन कमल चिंतन कै अब लागौ किछु रंग लहरवा ।२९॥

॥ खम्माच ॥

हनु[1] जनु धरिया[2] मदन अमिय की सहज सोहावनि सिय की ।
तामें गड़हा[3] बीज[4] बिन्दु जनु रंग भूमि रति पिय की ।
काम अनल धधकावनि[5] नीको चिकनाई जनु घिय की ॥
छोटी हरष रतन पोटरी[6] जनु बाहर आई हिय की ।
तापर स्याम बिन्दु मिस मोहर[7] भई अब गति नहिं बिय[8] की ॥
यामें दोउ कपोलन को रस बटुरि[9] भयो जनु थिय की ।
यह रहस्य सियबर ही जानैं को कहि सकिहै जिय की ॥
ऐसी छवि तौ देखि परैगी देवन हूँ की निय की ।
तैसी सिय छवि कैसे कहिये यह बनराई[10] धिय की ॥३०॥

१—हनु-कान के पास से ठुड्डी के पास तक हड्डी, २—धरिया-गोल छोटा मिट्टी का बर्तन। ३—गड़हा—गड्ढा, ४—बीज-मंत्र का बीज, ५—धधकावनि-धधकाने वाली, ६—पोटरी-पोटली-छोटे वस्त्र में बँधी रत्न की पोटली, ७—मोहर-निशान, ८—बिय-अद्वैत का भय, ९—बटुरि-इकट्ठा, १०—बनराई-बनरानी-पृथ्वी जिसकी माता है।

सिय जू के अधरन की अरुनाई का वरनों कोमलाई ।
पूरन उदित मनहुं ससि मंडल बाहू से अधिकाई ।
का बंधूक[1] अनार अनारी उपमा किन्तु न तुलाई ॥
राग रग चाही में अनतै[2] तौ अनुराग कहाई ।
देखत ही पिय मन को रंजन पुनि न कबहुं उचटाई[3] ॥
जानि ओठ से नोच अधर को लोभ कहा मुनि राई ।
धरा[4] रहित अति मृदुल अधर सो मोहत है बरिआई[5] ॥
का मंगल का अरुनों बिद्रुम केहि गिनती में भाई ।
देव बधूटी पान खिआवत खुलत[6] न चून ललाई ॥३१॥

* * *

सिय जू के मुख जनु पूरन चंद । जहं बरसि रहा आनन्द[1] ॥
झलकहिं दंत कला तेई सोरह अबर अमिय को कंद[2] ।

१—बंधूक–दुपहरिया पुष्प जो लाल रंग का होता है, २—अनतै–अन्यत्र, दूसरे स्थान पर, ३—उचटाई–उच्चाटन–उचटने नहीं देती, ४—धरा–पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण ५—बरिआई–बरबस, ६—खुलत–स्पस्ट ।

१—आनन्द–ब्रह्मानंद, २—सोलह कलायें चन्द्रमा की दंत पंक्ति के रूप में है अन्य दांत अमृत के कंद ही है ।

हँसनि लसनि चन्द्रिका हरति सो ध्यानि[3] जनन की दंद[4] ॥
अंबर में तारा मोतिन की झल झल झलक अमंद ।
एकै अंक[5] अचल ब्रत पालन अंक न और पसंद ॥
करत निसा[6] से निसा[7] सरद की जाको सुजस बिलंद[8] ।
स्याम ललित चोटी बन्धन मिस परो राहु जनु बंद ॥
परम सुखद उल्लू जन हूं को जो बिहरत निज छंद[9] ।
राम चकोर देव बंदी जन हरत मोह तम फंद ॥३२॥

★ ★ ★

सिय जू के गालन पर तिल बिन्दु । जनु मधु रसिक मरिन्दु[1] ॥
दियौ दिठौना[2] विधि कोउ मानत जनु दृग दूषन भिन्दु[3] ।
अक सहित लघु बसो जनु पूरन सारद इन्दु ॥
रुद्रहु को जीतन के कारन बसो काम जनु रिन्दु[4] ।
सून्यबाद जनु भा सरनागत अस कोउ करत पसिन्दु[5] ॥

३—ध्यानि जनन-मानसी सेवा करने वाले,

४—दंद-द्वंद्व, दुबिधा, ५—एकै अंक-एक ही अंश श्री राघवेन्द्र की मूर्ति नेत्रों में धारण किए रहती है, ६-—निसा-निराशा की प्रतीक, ७—निसा सरद-आशा उल्लास की प्रतीक, ८—बिलन्द-विशाल, ९—छंद-तंत्र, अपने वश में,स्वतंत्र ।

१—मरिन्दु-भ्रमरी-मधु रसिका भ्रमरी, २—दिठौना-दृष्टि दोष को बचाने वाला काजल का बिन्दु, ३—भिन्दु-भेदने के लिए-दृष्टि दोष को व्यर्थ करने के लिए । ४—रिन्दु-पतंगा, ५—पसिन्दु-पसंद मानते हैं,

मृदुता मखमल्ल सम सो कहिये लागा जा सिर जिन्दु[6]।
याको मृदुता पर मृदुता है होय रही सरमिन्दु[7]॥
या रस सो जानै जिन सेयो देव चरन अरविन्दु।
का जानिहै दाख रस कपि जेहि खाई बन की तिन्दु[8] ॥३३॥

★ ★ ★

सियजू की नाक में का[1] छवि छाई।
दोउ पुरवन[2] पर विन्दु नोकीलो तहँ इन्द्री रही आई।
गंध ग्रहत केवल पिरथी[3] को मारुत होत सहाई॥
जो अधार है मुख मंडल को नथ सँ प्रगट जनाई।
उन्नत नासा[4] ध्रुव मंडल लो जहँ नित जोति देखाई॥
चढ़त चढ़त जौ नाक अग्र से ध्रुव लौं द्रिग[5] चढ़ि जाई।
तौ हिय झलकनि प्रगट देखि कै जन सब भांति जुड़ाई॥
अंगन में मुख मुख मुखहूँ में नाक बड़ी ठहराई।
जाकी जरि में देव बिराजत त्रिभुवन नाथ गोंसाई[6] ॥३४॥

६—जिन्दु—जिन, भूत प्रेत। ७—सरमिन्दु—शरमिन्दा, लज्जित, ८—तिन्दु—जंगली खट्टा तीता फल।

१—क्या, २—रंध्र—नाक का द्वार, ३—पृथ्वी, ४—नाक, ५—आंख तक फैली, ६—स्वामी।

सियजू की नाक पर वारिय नाक[1] ।

दुःख रहित सुख सार सरग में अंत गिरन को आँक[2] ।
इहां तो मुक्त झुलत झुलनी में कहँ धनपति कहँ राँक ॥
बेचि जग्य फल सरग खरीदत बड़े बड़े चरबांक[3] ।
यह अनमोल परम पद दायक कहँ मोती कहँ कांक[4] ॥
उहां सरग में नाक सिकोरत सुनत अबर[5] की ढांक[6] ।
काको देखि कहौ यह सिकुरै सब पद मनहुँ छटांक ॥
भव सागर नहिं नांघि सकैगो जदपि कुरी[7] कोउ डांक ।
का जनि हैं अभिमानी यह रस असि देवन की हांक ॥३५॥

★ ★ ★

कहरवा

सियजू की सुन्दर नाक नथन की ।
मोसे कहि नहिं जात कथन की ॥
पूरन ससि मंडल सी तामें छवि झुलनी के गथन[1] की ।
अमिय बिन्दु से मोती झूलत गति जनु चारि पथन[2] की ॥

१—स्वर्ग, २—संभावना, ३—चालाक, धूर्त, ४—सामान्य पत्थर, ५—पर, ६—बिवाद, ७—खाई ।

१—गाँथने-गूथने की, २—वैदिक चार मार्ग जिनके फल हैं धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष,

दुइ मोतिन के बीच झलाझल झलकनि रतन सथन[3] की।
कर्म ग्यान बिच भक्ति लसत जनु गढ़नि[4] मनोज हथन की॥
नाद बिन्दु सी गुंज तार गति सिमटे भँवर जथन[5] की।
बदन कमल में जानि सुगन्धित सुधा समुद्र मथन की॥
निज लहरन से हरत महाछबि काम देव के ललित रथन की।
वाको सुमिरन मूरि रहत नहिं तन मन जरनि व्यथन की ॥३६॥

* * *

नभ बसत सियाजू के कानन में।

नभ सोइ सागर सागर सोइ नभ अस निघंट[1] के मानन में।
ताते दोउन के गुन यामें झलकि परहिंगे छानन[2] में॥
सबद[3] ग्यान औ लहरि[4] बिराजत मकर रेख की जानन में।
नयन कोर तक नभ श्रुति में ही कारन[5] धुनि पहिचानन में॥
यहि नाते से तीरथ यामें बसत सो लिखा पुरानन में।
दाहिन करन परस मन बोलत रहि तीरथ के मानन में॥
तारन की तरकी औ कुंडल कनक फूल यहि थानन[6]।
देव दिष्टि से सुचि रुचि उपजत सियजू के गुन गानन में ॥३७॥

३-स्थान-रत्न स्थान-रत्न भवन, ४—बनावट (अ०), ५—झुंड, जत्था।

१—शून्यवाद मानने वाला जो घट को निरर्थक मानता है, २—ढूँढ़ने पर, ३—नाद, ४—कुण्डलिनी की वक्र गति, ५—स्वप्न भ्रम, ६—स्थानों में।

॥ खम्माच ॥

सियजू के कानन झमकत झुमका[1] ।
लघु लघु लटकत मोतिन्ह संजुत केसर मनहुँ पदुम का ।
फल समूह सरगादिक छोटो जैसे बेद हुकुम का ॥
सुबरन तार बिधे सब मोती तिन में जगमग उमका ।
अलग अलग पुनि तनिक न अंतर ऐसे निगमन रुमका[2] ॥
श्रुति अधार गुन आप होय कै जो सिखवत गुन गुमका[3] ।
एक रूप जो दहिने बाँये धरे सुभाव कुसुम का ॥
तातै दरसन तामै मंगल जथा देव कुमकुम का ।
जिन के सुमिरन से सुठि सँवरत बड़ो दोष हम तुम का ॥३८॥

* * *

सियजू की आंखिन में सुरमाई[1] सहज भाव से आई ॥
कारे तिल रतनारे तारे कोरन पर अरुनाई ।
तिल के चहुँ दिसी कनक रेख सी जगमग जोति जगाई ॥
गजमद चढ़े लाज अंकुस धर पलक कमान चढ़ाई ।
जम धर[2] सी दोउ भौंह बांकुरी धीर न कछु चपलाई ॥
सेन सहित चतु रंगी जिन्ह के पीठि न कबहुं देखाई ।
इन की गति पद ही तक याते देखत ही जय पाई ॥
दोउ अयनन[3] के रवि से दोउ देव मनुज सुखदाई ।
तिल मिस बसे राम दोउ अक्षर तिन्ह हीं की जनु झाई ॥३९॥

१—कान में लटकने वाला गोल आभूषण, २—भूला हुआ, ३—अगुन का ।
१—साँवलापन, २—यमफांस के सदृश, ३—भवनों ।

॥ मलार ॥

सियजू की चितवनि अमिरित वरसत ।
विषय सरप के डसे अचेतन चेतन जाको परसत ।
नयन दोष[1] मिटि जात छनहिं में परमारथ पथ दरसत ॥
तीनि ताप[2] से जरत जनन की जरन पलहिं में गरसत ।
जनम मरन रुज बिनसत जातें चरन कमल रुचि सरसत ॥
चाह[3] चमारिन नाच नचावत ताहि तोष से धरसत[4] ।
रसना वस को देइ महारस नीच रसन से करसत[5] ॥
इन्द्र चन्द्र ब्रह्मादि देवता जेहि कारन नित तरसत ।
सो दासन को सुलभ दिवस निसि यह समुभत मन हरसत ॥४०॥

★ ★ ★

॥ खम्माच ॥

सियजू के भाल पर चमकत टीको ।
गोल कनक मनिमय जेहि देखत यह रवि लागत फीको ॥
अरध चन्द सो भाल सुलच्छन[1] ताप हरत जनही को ।
तापर भाग बिन्दु सो झलकत मन चोरत निज पी को ॥

१—दृष्टि दोष, भेद दृष्टि, २—कायिक, वाचिका, मानसिक, ३—अगनित भौतिक सुख की इच्छाएँ, ४—नीचे गिराती है, ५—खींचती है ।
१—सुन्दर लक्षणों से युक्त,

मंगल पाट[2] सूत से गाँथो लसत फूल[3] तहँ नीको।
दमकत अधिक अधिक छवि संतत बरत दीप जनु घी को॥
पावहिं देव बधूटी[4] जा सें थिर सोहाग भलती को।
जा को ध्यान धरत ही पूरत सुफल मनोरथ जी को॥४१॥

★ ★ ★

सिया जू के सीसफूल[1] झल झलकै।
अष्ट दलनि के कनक कमल में हीरा की छवि छलकै।
जो अपहरत[2] उदित सुकवा[3] छवि चलकन[4] से अति चलकै[5]॥
सुजस सुगंध सीस सो सरवर[6] भँवर माल जनु अलकै[7]।
राम दिवाकर कर परसन ते सदा प्रफुल्लित फलकै[8]॥
सरद चन्द से मुख समीप रहि मोहि लेत सब खलकै[9]।
जाको सुमिरत संत जनन को संसै[10] भ्रम तम दलकै[11]॥
वह छवि वह समाज वह जगमग देखि परत नहिं पलकै।
तीनि ताप मेटवत सो जनु मन देव सरित में हलकै॥४२॥

२—रेशम, ३—मांगफूल, ४—बधुएँ।

१—टीका-मांग का आभूषण, २—छीन लेता है, ३—शुक्र तारा, ४—झलमल, ५—झिलमिलाता, ६—सरोवर, ७—अलकावली, ८—फूली रहती है, ९—दुनियां को, १०—संशय-संदेह, ११—हिल जाता है।

सिय जू को चूड़ामनि दिनकर सो ।
गोल रंगीले मनि कोरन[1] पर मोती लरकत कर[2] सो ।
चोटी मिस जनु बँधे राहु के सिर पर चढ़ि कै हरसो[3] ॥
जनक राम के ग्यान जोग जनु सिय को अरपित दरसो ।
सदा उदित छिन छिन रस दूनो परम प्रेम के घर सो ॥
रामचन्द्र के हृदय कमल को जीवन धन औसर सो ।
जेहि बन्दत संध्यन में सत जन रोग हरत जो डर सो ॥
सब जोतिन को देव सिरोमनि मन इन्द्रिन के परसो[4] ।
चिन्ता मनि हूं को चिन्तामनि भक्ति कल्प तरिवर सो ॥४३॥

★ ★ ★

सिय जू के बिन्दु लसत भालन में ।
जैसे सरद चंद मंडल महँ लच्छन[1] छवि जालन में ॥
तारा से मोती जन चमकत गँथे स्याम बालन में ।
मोहन[2] बीज बिंदु सो नूतन तिल सोहत गालन में ॥
श्रवनन मांह श्रवन तारा से कुंडल चंचल चालन में ।
पीक[3] रेख अधरन पर मानहुँ संकुल[4] स्वाती लालन में ॥
भ्रमरावली भौंह जनु लोचन नूतन पंकज तालन[5] में ।
देव लोक जनु नाक हनु बसी जनु रसाल[6] मालन में ॥४४॥

१—किनारों पर, २—किनारों पर, ३—प्रसन्न, ४—स्पर्श ।

१—लक्षण-श्याम, २—वशीकरण, ३—पान की ललाई, ४—पुट-केले का गोंफा या सीपी का संपुट जिसमें स्वाति जल पड़ने से कपूर या मोती उत्पन्न होता है, ५—तालाबों में, ६—आम (पका) ।

॥ कहरवा ॥

गावत बेद पुरान सियाजू को गहना[1] ।
गहने[2] परख सब गहना[3] येही मत को गहना[4] ॥
गढ़ै सोनरवा[5] ताय[6] तेहू पर मल[7] ललकै[8] ।
अनगढ़ भूषन[9] बिमल सियाजू को तन झलकै ॥
अंतर गति दरसावन भूषन चमकि रहे ।
सियाजू के प्रति अंगन में भाव सब झमकि रहे ॥
का भूषन मनि अरपौं अंग के रंग नये ।
देव दिष्टि से निरखत मन अति दंग भये ॥४५॥

॥ सोरठ ॥

सियजू की छवि मो से कहि नहिं जाय ।
इन्दीवर[1] नयनन में परि सुरमा अति सरमाय[2] ।
पान पीक अधरन पर आवत फीकी लाल लखाय ॥
नयो मजीठी लाल महावर पद के छुवत हेराय[3] ।
कनक बरन तन में कस्मीरी केसर लगि न जनाय ॥

१—आभूषण, २—सामने, ३—गुण, ४—ग्रहण करना, ५—सद्गुरु, ६—शिष्य को खरा बनाना, शोधन करना, ७—भौतिक इच्छाएँ, ८—बढ़ती है, ९—अनगढ़ भूषन-सद्गुण ।

१—नीलकमल, २—लज्जित, ३—हीन हो जाती है ।

अंग अंग चमकन से भूषन चमक मंद परिजाय।
सरद चंदनि में तारा गन छवि जस किछु दरसाय॥
सीय देवता सकल छविन की कहा सो इहां समाय।
सुरुज चंद तारा गन याकी झलकहिं से झलकाय॥४६॥

सिय की छवि कहि जात नहीं।
भूषन हूँ को भूषन लखि कै कहे बिना रहि जात नहीं॥
लाल चरन तल मृदु अति चिक्कन जहं गुलाब सहि जात नहीं।
लाल लाल पंदुमन से पद नख इनकी गति थहि[1] जात नहीं॥
सरद मयंक[2] लजावन आनन अधर हंसी गहि[3] जात नहीं।
नयनन की गति निजपद ही लौं महाभावना जात नहीं॥
सीस फूल नासा श्रुति भूषन दमकन गति महि जात नहीं।
अंबर में तारा से चमकत देव दिष्टि लहि जात नहीं॥४७॥

॥ होरी काफी ॥

सबही की गति जानकी अनजान जान[1] की।
जस पंछी अव खसलत[2] पद को भूमि अधार निदान[3] की।
तैसे भूमि सुता गति गति को असि मत बेद पुरान की॥

१—थाह, २—चन्द्र, ३—पकड़ में।

१—प्राण को यह अज्ञात, २—ऊपर से पृथ्वी की ओर आता है, ३—अन्त को।

लाल चरन तल लालै करतल लाली जावक सान[४] की।
लाल मनहुँ करगत औ पद गत का गनती तब ग्यान की॥
रतन जड़ित सुबरन छवि झलकत बलिहारी पहिरान[५] की।
तत्व सहित श्रुति के सुबरन जस जहां न गति अनुमान की॥
गरे परी जनु मुक्त मुक्त हूं असि लहरनि मुसुकान की।
नित पसन्न मुख इष्ट देवता जो है गलित गुमान[६] की॥४८॥

॥ मलार ॥

नव रस लसत सिया जू के तन में।
नख सिख लौं सिंगार बिराजत करुना हिय नयनन में।
लाल बीर रस सोहत करतल पदतल औ अधरन में॥
कछुक हास रस अरध अधर लौं अदभुत रस चरितन में।
बड़ो भयानक रस भृकुटिन महँ रौद्र पाप नासन में॥
जन दुख सुनत बिदेह दसा[१] जो तहँ जो रस छन छन में।
सो बीभत्स भद्र दायक अति जस सावन मासन में॥
मृदु सुभाव सो अतुल सांत रस दुरलभ जो देवन में।
श्री जानकी महारस मूरति अस सुनियत संतन में॥४९॥

४—शान, ५—पोशाक, ६—मान रहित-अभिमान रहित।

१—दुखित दशा, २—इस पद में श्री सीता जी के शरीर भाव तथा स्वभाव में नव रस प्राप्त होता है।

छत्रो रितु सिय जू की आंखिन में। खोलि कहौं लाखन में॥
दृग प्रताप जड़ता[1] नासन जो सोइ ग्रीषम भाखन[2] में।
तड़ित जोति घन घटा कजरवा सो बरषा रस राखन में॥
सरद सफाई जो तारन[3] में पंक[4] न रज[5] राखन में।
हिम निरोगता तेज प्रबलता जस दीपक छवि ताखन में॥
गलित मइल[6] नौ जोति सिसिर रितु नये पात साखन[7] में।
किछु बसंत लखि परत ललाई जो दरसत पाखन[8] में॥
जो सुख इन में सो सुख नाहीं धरी कूबरी[9] काँखन में।
सो न देव रस दूध दही में जो रस माखन में॥५०॥

* * *

सियजू के अंगन में परम धरम लगि रहा।
पान दान अरचन में समता गुन जगि रहा॥
आँख दोय नजर एक समुझत मन पगि रहा।
करतल औ पदतल में लाल रंग रंगि रहा॥
उर उरोज जुगल जहाँ करुना रस टंगि रहा।
कंचन तन रोम रोम धरम बिन्दु तगि रहा॥

१--मूर्खता-भेद दृष्टि, २—कहते हैं, ३—पुतली, ४—अवगुण ५—तनिक, ६—मलरहित स्निग्ध, ७—शाख-डालियां, ८—कोनों में, ९—समधि टेक।

आँखन को तिलै देव देखत तम भगि रहा।
पद पर मन रहो पतित एतनै बर मंगि रहा ॥५१॥

लीला

॥ राग जंगला ॥

मनहि मन कौसिक करत विचार।
चौमासा के जग्यहिं मिस बनिहि भले खेलवार[1]॥
राम लषन असुरन को मरिहहिं रावन सुनिहि पुकार।
सिय विवाह होतै बनि परिहै देवन को उपकार ॥५२॥

—— ——

सुनत गुरु कौसिक को आगवन।
सो जाना जेहि कारन आगो साज बहाना हवन॥
राम अवध में सीय जनकपुर असमंजस संयोग भवन।
देवन को हितकारी यह मुनि मन राखन मिसी करिहि तवन ॥५३॥

नोट:—श्री सीता जी के अंगों में 'परम धरम' है, तात्पर्य-श्री की शरीर में कर्त्तव्य, समता, समर्पण, करुणा, आश्रय, तथा दैन्य का एकत्रीकरण हो गया है। पतितों के लिए इतना गुण एकत्र किस देव में मिल सकता है?

१—लीला।

जगत के मीतै[1] को प्रभु भजत[2] ।
विश्वामित्र हेतु[3] पुरवन को मात पिता को तजत ।।
जग्य जगत को पालत ताते जग्य साज सब सजत ।
देव जग्य द्रोहिन को मारत बेद नगारा बजत ।।५४।।

———

रघुबर ताड़ुका तिय मारी ।
यदपि कहेउ गुरु हतहु कोप बस तदपि न नीति बिसारी ।।
उत्तम नर उपजत नारी से अस अबध्य को तारी ।
यासे अघमै होइहै याते गुरु आयसु नहिं टारी ।।५५।।

———

रघुबर मूरत साँवरि है ।
याके आगे ग्यानिन को धन आतम[1] रूप नेछावरि[2] है ।।
निज सरूप को बकसत[3] परसत जाकी पद रज नावरि है ।
देव दुंदभी बाजत सोई तरी अहिल्या पांवरि है ।।५६।।

१—विश्वामित्र, २—भगवान सेवा करते हैं, ३—कार्य ।

१—योगियों का आत्मस्वरूप, २—निछावर, ३—क्षमा ।

सिय[1] जनु पदुम जनकपुर सर है।
धनुष गहिर जल जाल जनकपन करि न सकत कोउ सर है॥
उठी महक त्रिभुवन में फैली दौरे चाही नरबर है।
असत जाल में फंसतै पलटत बैठत बनि कायर है॥
कौसिक मुनि जनु पवन मनोहर लेई आयो तहं राम भँवर है।
अनायास ते नाँघि जाल को मिला पदुम जो श्रीधर है॥
पदुम बिना न थिरात भँवर यह पदुम भँवर बिनु दूबर है।
पदुम भँवर संबंध सनातन देव रचित नहि बरबर है॥५७॥

॥ होरी खम्माच ॥

धनुक भंग परसंग मोसे कहि नहिं जाई।
उदै अस्त के राजे आये, रावन बानौ ताकि पराये,
तहां राम सिव धनु चटकाये, जीति महारन रंग,
धुनि सहि नहिं जाई॥
परसराम छत्री कुल चाकी, रामहि देखत धरती ताकी,
राज सूय[1] में का अब बांकी, जीति गई जग जंग,
गति गहि नहिं जाई॥
सगुन होत निरगुन धनु टूटा, असगुन को घट मानहुँ फूटा।
जनक राय का संसय छूटा, भगे भूप होय तंग,
छन रहि नहिं जाई॥

१—सांग रूपक योजना हुई है

सीय राम संयोग नयो नहिं, इनको बिछुरन कबहुँ भयो नहिं,
चंदा में घन खंड गयो नहिं, देवन को यह ढंग,
अस महि नहि जाई ॥५८॥

————

धनुष क तोरा काहे राम ।
रहा करार[1] चढ़ावन ही को तोरन से का काम ॥
देखत सगुन देव आपुई से सगुनन भयो गुलाम ।
तेहि से तो ए कबहूं न पावैं फेर सगुन को नाम ॥ ९॥

————

भाइहु भल भा धनुष न तोरा ।
नाहिं तो परस राम आँधी को कवन सहत झकझोरा ॥
निडर होय जे धनुष चढ़ाइस देहु उतर से या वह गोरा ।
परस धार देखतै छट्ठी को दूध सुरति करि चेतहि छोरा[1] ॥
वृथा जगत में जनी जानकी वृथा जनक नृप बृन्द बटोरा ।
धनु तोरे डर परसराम से बिनु तोरे नृप बनत छिछोरा ॥
देखत रामहि परस असी भा जस अंगारक रवि की ओरा ।
देव दुंदुभी गह गह बाजी देखि दसा सिय हँसि मुख मोरा।६०॥

१—वाणासुर, २—चक्रवर्ति पद के लिए यज्ञ विशेष ।
१—वादा ।
१—लड़का ।

॥ पद ॥

॥ टोड़ी ॥

भये पांच विजै[1] धनु के तोरत।

जुलुम जुलुम कहि सुर मुनि अंगुरी अपनी दांत तरे जोरत॥

राज समाज जनक फरसा धर रावन सिवहू मुख मोरत।

हरषित देव असुर कंटक को लातन मरदत झक झोरत॥६१॥

॥ पद ॥

आई पाँच कुमारी[1] राम वरन।

लज्जा कीरति प्रीति दीनता, जनक नन्दिनी ठानि परन॥

रूपवती सिय रूपवन्त को, पहिराई जयमाल गरन।

बिना रूप की चारिउ कन्या, कोपि चलीं ते चारि ढ़रन॥

मानहिं राजन लाज बरेसि हठि कीरति चली दिगंत तरन।

प्रीति जनकपुर रही दीनता, परशुराम को चहत धरन॥

रामसिया संजोग सनातन, नयो नहीं संयोग करन।

"देव" वधूटी नाचहिं गावहिं, नौवत लागी झमकि झरन॥६२॥

१—पांच विजय--१--धनुभंग, २--राज समाज में श्रेष्ठता, ३--रावन को चुनौती, ४--परसुराम की पराजय, ५--श्री जानकी की प्राप्ति।

१—लज्जा, कीर्ति, प्रीति तथा दैन्य के साथ श्रीजूने अपने को श्रीराम को समर्पित किया।

॥ पद ॥

॥ धना श्री ॥

सुनहु श्री सिय विवाह परसंग ।
जाके श्रवन मनन सुमिरन से उपजत प्रेम अभंग[1] ॥
अगहन सुदी पंचमी सन्ध्या भानु कुसुम के रंग ।
तब भद्रचारि[2] बनै न विलोकनि मिले अंग से अंग ॥
सिय बिवाह फल्गुनी नखत में अस वाल्मीकि[3] तरंग ।
व्याह सुदी में सूत कहत है तब यह तिलक उमंग ॥
सजे सरुज[4] कुल देव बराती भलो देखि सब ढंग ।
महा आनन्द[5] सिन्धु को लहि कै सिव सनकादिक दंग ॥६३॥

॥ वसंत ॥

[1]बराती भयउ मनहुँ रितुराज उत बरषा को साज ।
नारि गान कोइल जनु कुहकत डंका घन को गाज[2] ॥

१—निर्बाध-बाधारहित २--समाधी का मिलन तथा स्वागत, ३-श्री बाल्मीकि ने रामायण में श्री सीताराम जी के विवाह का यही समय निर्धारित किया है । ४--सूर्यवंशी राजा. ५--ईश्वर साक्षात्कार का आनन्द ।

१--इस पद में बरातियों को वसंत कहा गया है । सारा वातावरण वसंत ऋतु के अनुकूल है तो उधर कन्या पक्ष में वर्षा ऋतु का वातावरण उपस्थित है । यहां दोनों एक दूसरे के विलोम होते हुए भी शोभायमान हो रहे हैं । २--ध्वनि,

उठत सुगंध मही[3] से चहुँदिसि बरसत रस अंदाज।
लाल-लाल कर पल्लव लाखन फूले सुमन समाज॥
नभ में उड़त मनहुँ बकमाला[4] है न सकत अंदाज[5]।
मन में मानस पंकज फूले छूटि गई जनु लाज॥
बहुत अरगजा पंक मही में लहरत जीव अनाज।
पूरत कामदेव नर किन्नर सिद्ध होत सब काज॥
दामिनि से भूषन अस चमकत दोउ भूपति सिरताज॥६४॥

॥ पद ॥

नारि सुभग मंडप तर मंगल गावहीं।
सुनि-सुनि सीताराम बहुत सुख पावहीं॥
काल करम गति छेकि[1] इहै छवि नित रहै।
निरखि-निरखि सब लोक महासुख के लहो॥
राम केसरिया पट सजे सीय लाल को।
दुओ प्रीति के रंग रंगे यहि चाल को॥
राम बसत नित सिय में राम में सीय हैं।
दोउन के पट कहत दोऊ एक जीय[2] हैं॥
प्रथम चउथ औ बीच के अक्षर जोरि कै।

३--पृथ्वी, ४--बगुलों की पंक्ति, ५--अनुमान।

१--रोक, २--जीव-एक हृदय,

ए दोउ तारक[५] सीम छनत रस घोरि कै ॥
मिथिला जाउ अवध कि अवध इहाँ आवऊ ।
दिन बिछोह कर हम कहँ विधि न देखावऊ
सरबस [४]राज्य अरपि नृप राखहिं राम को ।
नाहिं तो होइहैं विदेह यथारथ नाम को ॥
नित विहार सियाराम को दोउ ठांउ में ।
देव करहिं यहि भांति कुसल दोउ गाँउ में ॥६५॥

॥ पद ॥

जयति श्री जानकी राम जोरी ।
जगमग गनुत[१] रतन जनु बिमल नखत-
गन बदन पर वारिये[२] ससि करोरी ॥
सरद नभ स्याम श्रीराम मुनि अगम[३],
तम हरन जोति सी सीय गोरी ।
दोउ मिलि राम की रामता[४] बनि गई,
जहां कलिकाल की नहिं झकोरी[५] ॥
भई बड़ि भीर रघुवीर छबि लखन को,
झाँकि-झाँकहिं तिय तिनक तोरी ।

३-सीताराम-प्रथम 'सी' चतुर्थ-'म'=जीव 'ता'='सीम' । ४-सब कुछ ।

१- तन ज्योति, २--निछावर, ३--कठिन, ४--रमण की बात चरितार्थ हो गई, ५--द्वंद्व, ६--मनोरम ज्योति की एक आतिशबाजी,

बरत महताब[6] पर परत पांखी[7],

यथा प्रेम बस होय रही देह भोरी[8] ॥

तहां सिय मातु की का दसा मैं कहौं,

देव में भय लगि गै ठगोरी[9]।

रीति व्यबहार तब को कहै को करै,

थकित गति देखि ससि जनु चकोरी॥६६॥

———

॥ पद ॥

प्रीति अलौकिक राम सिया की।

कहि न जात मनहीं मन भावै, जहां नहीं गति जन्तु जिया की॥
यह हिय वह हिय से सब बोलत, वह हिय यासों कहत हियाकी।
दोउ हिय में पस्यन्ती[1] प्रगटी, चलनि न मध्यम वैखरिया की॥
कहे सुने देखे से जग में, होत भाव गति पुरुष तिया की।
गुन धन रूप तीनि से उपजै औ विनसै रति सो विषया[2] की॥
झूंठी प्रीति भूमि गन्धौ की, मिटत अंत में जस बनियां की।
परमारथ सियाराम "देव" की, प्रीति एकरस नहिं दुनियां की६७

७—पतंग, ८—भावमग्न, ९—ठगविद्या-सम्मोहन।

१—वाणी जो विना उच्चारण के समझ ली जाय, २—संसार को मोहने वाली।

॥ पद ॥

राम दुलह सिय दुलहिन की मन ही मन मूरति भाय रही।
लाल पीत अंबर मिस जनु वह गोधूली तहं छाय रही॥
रतन मुकुट दुति सिर पर जगमग तारा पथ[1] दुति पाय रही।
उत मोतिन मिलि चूड़ामनि छबि तारापतिहि बिराय[2] रही॥
इत कुंडल मिस रबि लहरत जनु उत बिरिया[3] झलकाय रही।
इत कर लसत रतन कंकन छबि उत पहुँची पहुचाय रही॥
पायंन के मखमल मखमलिया जोरो यह समुझाय रही।
या रस कहत महादेवहु की मति गति प्रेम भुलाय रही॥ ६८॥

॥ पद ॥

जगमग सिय मंडप में मंगल रचि रह्यो।
मंगल पुरुष आपुइ जनु इहां नचि रह्यो॥
सोरह बिधि सिंगार[1] मदन मन में कहे।
अनायास ते सिय अंगन में सजि रहे॥

१—आकाशगंगा, २--लज्जित, ३--कान के कर्न फूल को वेनी।

१—अंग सुचि मज्जन वसन जावक पद सुलगाय।
केस सुधारि सुरागि अंग मेंहदी की छवि छाय॥
भाल खौर सिन्दूर बर विन्दू चिवुक बनाय।
अधर राग रद राग रचि भूषन अंगन सजाय॥
अतर सुकज्जल पान मुख यह षोडस सिंगार।
करि देखै आदरस में पावै पति सुख प्यार॥

अंगन की उज्वलता सो सिंगार है।
नित नयी साजै ऐसी याको बिचार है॥
शृङ्ग नाम अभिमान सो जामें नित्त बढ़े।
जेहि समाज अंगत दूनो रंग चढ़े॥
आपुहि मह-मह महकत सियजु को अंग है।
गंध लगावनिहारि मनहिं में ढंग है॥
नील कमल से सिय-दृग आपुहि अँजि रहे।
अँजन-साजिन के मन तब लजि रजि रहे॥
नित चिक्कन कच सिय के पिय के सनेह भरे।
आलिन तेल लगावति मन संदेह परे॥
सिय अधरन पर लाली मानहुं पीक है।
सखि कह पीकहुँ ते यह लाली नीक है॥
अधरन ओठन तर रहि होहु उदास हो।
सोई ऊँचो जामें अमिय को बास हो॥
सिय पाँयन की लाली लह-लह लहकत है।
नाउन लिये महावर लखि-लखि अहकत[1] है॥
सिय तन पावन उज्ज्वल गंग तरंग से।
तिनको मज्जन केवल जन की उमंग से॥
आनन यहि समता ते आनन नाम है।
सिय मुख ही में अर्थ बनत अभिराम है॥

१—पछताती है सेवा का अवसर नहीं मिला।

माया के सब तर्ज[1] हँसनि में समाय रहे।
राम से धीर पुरुष हू जामें लोभाय रहे॥
रामधरे धनु बान सुरति सिय भौंहन में।
औ सूरति सियजू के नयन रिसौंहन[2] में॥
कानन में सियजू के राम लोभाय रहे।
लोग कहत गये कानन ते बउराय रहे॥
देव नजरि जहँ हारति तहँ का चाम की।
चूक सुधारहिं सज्जन पतित गुलाम की॥६९॥

× × ×

अनगढ़[3] भूषन तन को वयस किसोर है।
ता पर जो कछु भूषन सो सब थोर है॥
सिय के पद में महिधर[4] तेज विराजि रह्यो।
तब अनवट औ बिछुवा आपुइ साजि रह्यो॥
तारन सहित सरद ससि झलकत सिय हिय में।
चन्द्रहार बाकी नकल विचारहु तुम जिय में॥
हंस—वाहिनी[5] तेज कंठ में सोहत है।
सो हंसुली रूपे[6] को जन मन मोहत है॥
कर अंगुरिन में मुदरी पांचों तत्त्वन की।
उपजनि है इन ही ते चराचर सत्वन[7] की॥

१—प्रकार, २—मानपूर्ण रिस की अभिव्यंजना, ३—बिना गढ़ा हुआ अर्थात् सद्गुण, ४—शेष नाग, ५—सरस्वती, ६—रुपहली, ७—सत् गुणों से पूर्ण।

ससि मंडल को तेज बदन में छाइ रह्यो।
नभ मंडल हूं सोई भाव देखाइ रह्यो॥
सागर रवि को तेज लसत सिय कानन में।
करन फूल के का फल मानन में॥
भालन में तप लोक[1] महा छवि बसि रह्यो।
सिय भालन में टीका सोई लसि रह्यो॥
सिर पर नभ का तेज सोई कच स्याम है।
तारागन भए मोती झलक ललाम है॥
चूड़न पर ससि पूरन झलकत छवि भरो।
चूड़ामनि सोई छविमय सिय सिर पर धरो॥
सिय नख सिख छवि पूरन कतहुं कमी नहीं।
तहं जो दूषन देखिहि सो तो कमीन ही॥
मुक्तन को नहिं आदर सुख जहँ दास है।
सकल सुमन जहँ महकत तहँ सिय बास है॥
का थल थल में फिरि फिरि खोजहु सीय को।
घटहिं[2] में सियजू झलकि हैं कसहु निज जीय को॥
प्रेम अवधि जो बनि कै सब सुख केलि है।
की बिदेह जो बनिहि तहां सिय खेलि है॥

१—पूण्य तेज, २—शरीर में।

चहत निकाई सब कोउ निज निज जान की।
सोई जानकी सुगति है अजानं सुजान की॥
सकल छबिन की देवता हैं श्री जानकी।
तहँ कहिये सो थोर बात यह छान की॥७०॥

× × ×

सिय जू के तरवा लाल सुमंगल जगमगे हो।
मानहुँ जिय से हारि महावर पद लगे हो॥
बिछियन की धुनि मंजुल छिन छिन बाजत हो।
पद कमलन पर गुञ्जत अलि जनु साजत हो॥
महि जल तेज पवन नभ[1] अंगुरी पद की हो।
देखहु एक से एक बड़ो तर कद[2] की हो॥
पांच नखन की जोति मिली जनु दीप हो।
ब्रह्म-भाव[3] भल झलकत पद के समीप हो॥
विन्दु[4] अँगूठा मंडल नख सो नाद हो।
ये दोउ पद ही से लागे तजहुँ बकबाद हो॥
कमल कली को अग्र सो एँड़ी मानिय हो।
पद अग्र सो मूल[5] कमल को जानिय हो॥
जो कि जगत की जोनि[6] सो पद तर झलकत हो।
समुझत पद कै भाव बहुत मन ललकत हो॥

१—पंचतत्व, २—लम्बाई, ३—समता-एकाकार, ४—बीज मंत्र, ५—कमल का मध्य, ६—चौरासी लक्ष योनि (जीव)।

दहिन बाम पर समता जुग को अस रस हो।
इष्ट देव संतन के महारस[1] जहाँ बस हो॥
जंघा तक सो कंठ अलख को बास है।
तेहि ते ये सिय अंग कहत उपहास है॥
जेतनी उपमा देउ लगति सो थोरि हो।
सिय जू के मुख पर वारौं मैं चन्द्र करोरि हो॥
ससि मंडल अस नथ में झुलनी डगमग हो।
चारि मुक्ति असि मोती चारिउ जगमग हो॥
अति सुन्दर तिल सोहत बायें गाल में।
आँखिन को तिल मानहुँ सटि रह्यो खाल में॥
घरिया असि हनु तामें गड़हा अस खलै।
काम बीज को बिन्दु मनहुँ जहँ जग धुलै॥
अधर अरुनता आपइ जनु अनुराग है।
तामें सोरह[2] रेखा मनहुँ सोहाग है॥
ऊपर को पट लाज ढ़ांपत जो दांत को।
एई दूनउ पाख लखहुं यहि नात को॥
हीरा से रद सुन्दर अन्दर झलकि रहे।
कबहुं अधर पर झलकनि लखि जिय ललकि रहे॥

१—परमानंद,
२—अधर पर सोलह रेखा होना अक्षय सोहाग का लक्षण है।

रवि मंडल सी बिरिया जहँ श्रुति[1] बास है।
बालखिल्य[2] से बिन्दु लगे आरि पास है॥
करन फूल जस केसर झमकत कानन में।
सिन्धु निवास जनावत बारिज मानन में॥
नासा पुट की डोर[3] छुये ध्रुव मंडल को।
जहँ चमकत नित चन्द्र अगम जो अखंडल[4] को॥
दोउ भउन के अंतर कुंकम बिन्दु बसै।
दोउ संध्यन के बीच उदित रवि जस लसै॥
सियजू के अनुपम दृग उपमा तब का कहौं।
सब विराट[5] के अंस कहां तक केहि महौं॥
झूठों तप जिन कर कमल बिरथा जाइहै।
सिय लोचन की समता कबहुँ नहिं पाइहै॥
सीम फूल सियजू को झलकत सूक सो।
अति सोभा वह बरनत कबि भयो मूक सो॥
स्याम केस मोतिन्ह गुथे मन मोहत है।
जैसे निसि में आकास तारन से सोहत है॥
मांग रेख अति निरमल मोतिन से रली[6]।
जसि नभ-गंगा-धार तारन से मिलि चली॥

१—कान, २—क्रम से, ३—बेसरि-नथ की डोरी जो कान से बँधी होती है, ४—जो अखंडित न हो। ५—व्यापक तथा दीर्घ।

६—सजी-भरी।

कटि लौं चोटी तापर चूड़ामनि बसै।
मेरु-दंड[1] पर मानो दिनमनि अति लसै॥
कर पदुमन में पदुम विराजत सीय के।
हृदय-पदुम जनु करगत अपने पीय के॥
सीय पीत पट पहिरे तनु अनुहारि हो।
कबहुं नील पट पहिरत पियहि निहारि हो॥
नित प्रसन्न मुख सिय के करुन दृग हिये।
नख सिख लौं सिंगार रस जनु घर किये॥
सियजू को सिंगार कहत श्रुति अहि[2] थकै।
जो कोउ बरनौ चाहै तो केवल बक बकै॥
विषय चहै की ध्यान कि चाहै ग्यान को।
सिय मंगल से पाइहि सब रस पान को॥
मंगल हूं को मंगल सिय गुन गान में।
पिय देवर के संग बसउ सिय ध्यान में॥७१॥

★ ★ ★

१—कमर से नीचे का भाग, २—शेष।

॥ होरी काफी ॥

बँदी अगिन मिस होरी जनु जागि रही है ।

अगहन में रबि अलि[1] पर आवहिं,

मित्र मित्र करि प्रेम बढ़ावहिं,

सोइ बसंत में काम जगावहिं,

अस समता टकटोरी,[2] अनुरागि रही है ॥

बहुत सवाँग[3] नटन के नाचहिं,

गारिन के पुरान से बांचहि,

हिय अनुराग गुलालहि सांचहि,

भरि भरि लोचन झोरी, लय लागि रही है ॥

पूजि अगिन को फिरत भाँवरी,

जोरी सुन्दर गोरि सांवरी,

देखि रंग रस आव ताँबरी[4],

चितवत तिय तिन तोरी, भय त्यागि रही ॥

राका[5] निसि सी सिय जू साजत,

रामचन्द्र पूरन ससि राजत,

देव दुंदुभी गह गह बाजत,

हृदय बसहु यह जोरी, बर मागि रही है ॥७२॥

१—उत्तरायण, २—ढूंढ़ लिया, ३—प्राणी, ४-शक्ति, ५-पूर्णिमा ।

॥ ईमन ॥

मंगल के हृदय भई प्रीति नहीं थोरि है।
मन ही मन गुनत भौम[1] सिया बहिनि मोरि है॥
सिय जू के रूप नाम गुनन की ओरि[2] है।
मंगल तहँ वस्यौ यही बेदही निचोरि[3] है॥
लौकिक बैदिक विधान भले रंग घोरि[4] है।
लाज होम[5] समै कवन काहि अब निहोरि है॥
भाय बहिन को कुरा[6] अटूट कौन तोरि है।
इष्ट देव आनि दृष्टि पतितौ कर जोरि है॥७३॥

★ ★ ★

॥ होरी खम्माच ॥

श्री जानकी विवाह सुनि अचरज लागै।
नित संजोग सिया रघुबर को,
जैसे चंदनि औ हिमकर[7] को,
तहं बिछुरन कहौ कैसे ढरको,
सिद्ध कथन मो व्याहन तो सचरज लागै॥

१—मंगल, २—अन्त, ३—सम्मति, ४—मिला हुआ है, ५-हवन-गठबधन हवन के बाद होता है, ६-कुल, ७—चन्द्रमा, प्रसन्नता का मूल,

जगत जननि सिय जनकौ जनिहै,
तब सिय पितु वै कैसे बनि है,
कवन गोत में सिय जू सनि है.
संकल्पौ औगाह[1] सब खचरज[2] लागै ॥

बिनु संजोग वियोग छनत नहिं,
बिनु बिछुरन संयोग बनत नहिं,
यहि बिनु जग परतीत जनत नहिं,
जो मानो जग छांह कचपचरज[3] लागै ॥

चारिउ बेद विधान करावहिं,
आप प्रगट होय देव पुजावहिं,
दिनकर कुल आचार[4] बतावहिं,
इन बिनु का न निवाह सब ढचरज[5] लागै ॥७४॥

★ ★ ★

लखि कौतुक घर में नारि हँसि हँसि पूछत हैं रघुबर से ।
तुमही जगत को सार कहै श्रुति कहि न सकहिं हम डर से ॥
तुम नहीं पुरुष न नारि कहत श्रुति खेलहु खेल मकर[6] से ।
सो लखि परत मकर कुंडल से और किसोर उमर[7] से ॥

१—गूढ़, २—उलजलूल बिना अर्थ का ।
३-अच्छा नहीं लगता, ४—व्यवहार, ५-ढ़ोंग, ६—छल से, ७-वय ।

दसरथ गौर कौसिल्या गोरी तुम स्यामल केहि घर[1] से ।
दोउन के हरि ध्यान प्रगट भए अरु हमरे अटकर[2] से ॥
व्यंग चतुरता गारी सुनि के देखा राम नजर[3] से ।
भईं कृतारथ 'देव' मनावहिं जनि ये जाहिं नगर से ॥७५॥

★ ★ ★

सिय भई सुभग मदन की बाग[4] ।
सुमन बाटिका परम मनोहर ताको मनहुँ सुहाग ॥
रूप बसंत मृदुल कर पल्लव भुज वल्लिन की लाग ।
नयन कमल जंघा रंभा सी मंहक मनहु अनुराग ॥
देखि राम मन भंवर लोभाना अलख प्रेम रस पाग ।
नाभि बहुत गंभीर सरोवर जहँ दुइ हंस विभाग ॥
पीत बसन परिखा जनु सोहत भूषन ध्वनि सग बाग ।
सियाराम को ताग जुरत ही भाग देव को जाग ॥७६॥

★ ★ ★

नख सिख सिय अंगन में छवि[5] सखी साहाय रही ।
रतनन सी अंग झलक छवि सोई कहाय रही ॥

१—माँ से, २—अन्दाज, ३—दृष्टि-कृपा दृष्टि ।
४—प्रस्तुत पद में श्री सीता जू की बाग कहा है और रूपक विधान किया है । ५—शोभा,

नित जहां किसोर–दसा[2] काल गति मिटाय रही।
केलि सोह ग्रहन[3] से किसोर नाम पाय रही॥
भूषन[4] के भूषन[5] सी भूषनन[6] फिकाय रही।
तारन की छविहि जथा चांदनी छिपाय रही॥
जाहि देखि छबियन[7] को देव तौ लजाय रही।
रघुवर को महाभाग दीप को जगाय रही॥७७॥

◉ ◉ ◉

मिथिला अवध के हास विलास, सुनि सुनि बढ़त हुलास॥[1]
अहां त पर पुरुषहि से, तुमहूं रहहु जनक के पास।
अहां अजोध्या तुमहूं बिदेहा तनिक न होस हवास॥
जरिहा[2] सब टा लोग अहां के, उहउँ विदग्ध[3] नेवास॥
अहां के देस कनीक[4] अनरसा,[5] राउर दही मिठास॥

२—सर्वदा श्री का रूप किशोरावस्था में ही वर्तमान रहता है क्यों कि वहाँ कालगति का संचरण नहीं होता, ३—श्री राम जी के करग्रहण करने से केलि कैशोर बनी हुई है।

४—सौन्दर्य ५-श्रेष्ठ भूषणों की आवश्यकता नहीं रह गई है, ७-जिसे देख कर महाछवि भी लज्जित हो रही है।

१—श्री जनक जी के महल में हास बिलास के मध्य श्री सीता जी और राम जी की तुलना सखियां करती हैं और उसमें श्री राम जी को श्री सीता जी से निम्न ठहराती हैं। २-विरहाग्नि में जलेंगे, ३-विरह वहाँ अर्थात् अयोध्या की सखियों को भी होगा, ४-तनिक, ५--अन-रस है, बिना रस का, ६--अयोध्या वालों की बचन बहुत गर्वपूर्ण होती है।

अहँ कै बचन अहंकारे[६] कस, तोहरिउ छौ परकाश[७] ।
अहँ कै दसरथ राव तुम्हारेउ निमि औने मृदु हास ॥
अहँ कै छथि चकवै[९] प्रिय तो हरिउ चक्रधरहि की आस ।
देव मुदित सिया राम मुदित मन मुदित होत रनिवास ॥७८॥

॥ खम्माच ॥

सिय जू की सर कर सकत न राम ।[१]
याको न्याव[२] करकि बेलागी इहां न हठ को काम ॥
जनक देवैया[३] राम लेवैया[४] काको ऊँचो धाम[५] ।
जगमें प्रथम सिया कहि पाछे परत राम को नाम ॥
श्री पद ही से सबको सोभा सो श्री सीय ललाम[६] ।
सीय चरित ही धरे राम पर रिषी की यही कलाम[७] ॥
केस संवारन पद धोवन में को छपि बनत गुलाम ।
देव रहस्य समुझि मन सुमिरहु सिय को आठौ जाम[८] ॥७९॥

७--जनकपुर वालों की वाणी में प्रेम का प्रकाश है, ८--दशरथ महाराज और जनक महराज दोनों में मृदुहास जनक जी ही जानते हैं, ९--चक्रवर्ती ।

१– यह पद भी महल में हास परिहास से संबोधित हैं, २--न्याय, ३--देने वाले, ४--लेने वाले, ५--स्थान, ६--शोभा की खानि, ७--श्री वाल्मीकि ने श्रीसीता का ही चरित्र सारी लीला का कारण माना है, ८--प्रत्येक क्षण-चौबीस घंटे ।

॥ भैरवी ॥

सिया जू रानिन में महरानी और सबै रौतानी[1] ॥
चितवत भौंह[2] खड़ी कर जोरे इन्द्रानी ब्रह्मानी ।
गौरा पान लगावत रचि रचि रमा पत्रावत आनी ॥
आठौ सिद्धि[3] खड़ी कर जोरे नवनिधि[4] मनहुँ विकानी ।
कोटिन ब्रह्मांडन की प्रभुता रोम रोम अरुझानी ॥
जो माया[5] एकै घाटै पर सबहि पियावत पानी ।
सोउ चाहत जाकी करुना को बार बार सनमानी ॥
जा बिनु पातौ[6] हिलि न सकत जो सब घट[7] मांह समानी ।
संत जनन की इष्ट देवता राम प्रिया जग जानी ॥८०॥

॥ जंगला ॥

सिय जू विहरत श्री बन में[1] ।
जहां छवो रितु सदा वसत हैं नयो सुख छिन छिन में ॥
मंगलादि[2] बन आठ सखिन के आठो आसन में ।
इनके मध्य बिन्दु सो राजत जस ससि तारन में ॥

१—पटरानी-अप्रधान, सामान्य पत्नियां, २--"भृकुटि विलास जासु जग-होई । राम वाम दिसि सीता सोई,' ॥ ३-आठ सिद्धियाँ--अणिमा, महिमा गरिमा प्राप्ति, प्रकाम्य, ईशित्व तथा वशित्व, ४--नवनिधि-पद्मम महापद्म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुंद, कुंद, नील और बर्च्य ५- माया-साँसारिक आकर्षण बनाये रखने वाली भौतिक शक्ति। ६--पत्ता भी, ७ -सर्व भूत में रम रही हैं ।

१—साकेत का एक बन जहाँ सदा श्री का निवास रहता है ।

बहुत सुगन्धित फूलन के द्रुम भँवर गुंज कुंजन में।
रंग रंग के पंछी बोलत लहर उठत है मन में॥
सिया सरूपै झलकत जाके फूलन तरु पातन में।
जो सुख यामें सो देवन के नाहीं है नन्दन[3] में॥८१॥

श्री बन मनहीं मन में भावत।
कहत न बनत बनत वह देखत कोउ सुकृती[1] रस पावत॥
रंग रंगीले फूल सियामय मधुकर प्रेम बढ़ावत।
भासत देखि कुंज को अंतर सिया चली जनु आवत॥
कबहुँ केसरिया कबहुँ चूनरी कबहुँ नील लहरावत।
कबहुँ गुलाली महकत पट छवि कुंजन में दरसावत॥
जेहि कारन जप तप को साधन घर तजि मूड़ मुड़ावत।
याको देखत सोई देवता अनायास उर छावत[2]॥८२॥

॥ पद ॥

सिय जू को रमन श्रीबन में।
बेला गुलाब चमेली कमल जहं महकत है छन छन में।
छवो रितुन के सुख नित जैसे इन्द्रिन के सुख मन में॥

२-अष्ट बन जो आचार्यों ने बताये हैं—इन्हीं के मध्य में श्री बन का वर्णन सिद्धान्त ग्रन्थों में मिलता है। ३-देवताओं के बिहार का स्थल नन्दन कानन'।

१—भाग्यवती, २-श्रीबन श्री का ध्यान है—।

कबहूं हिंडोला भूला कबहूं-कबहूं फूल डोलन में।
सुक पिक आदि मनोहर पंछी बोलि रहे कुंजन में॥
जगमग जोति सिया जू की सोहत सुन्दर अलि जन में।
पूरन सरद चंद की चाँदनि झलकत जस तारन में॥
बन सोभा सखियन की झमकनि अति सोभा सिय तन में।
ईश्वर देव सुखहुँ को वारौ जैसे कौड़ी[१] रतन में॥८३॥

॥ मलार ॥

सिय जू में दीन बन्धुता[१] पाई। अविचल नख सिख छाई।
सीत[२] नाम जूठन से नीची हल रेखहुँ में निचाई॥
ऊँच-ऊँच सिगरे पद तजि के सीतै नाम कहाई।
भालन पर बालन को राखे अति सनेह चिकनाई॥
मधुर सुधा अधरन पर राखी माथे पर करिआई[३]॥
दोउ करन कंकन[५] को राखे हार[६] उरन लहराई।
धरी कुटिलता दोउ भौंहन में पेटन माँह खलाई[४]॥
अकरम[७] धरे करन में पग में रही मंदता[८] आई।
देव नजर से लखहुँ पटन में मलमल बहुत सोहाई[९]॥८४॥

१—बिनमोल की वस्तु—'श्री' का ध्यान है।

१—दैन्य गुण, २-जूठ, उच्छिष्ट, तथा हल का फाल जिसे संस्कृत में सीता कहते हैं। ३—कालापन. ४-गभीरता, ५-भूखे दुखी, ६—पराजय, ७—अकर्मण्यता, ८—आलस्य, ९—साधक की दृष्टि से देखने पर लगता है श्री किशोरी जी ने संसार के अवगुणों को धारण करके गुणों से भी उज्ज्वल कर दिया है।

सियजू को ललित[1] नहीं कहि जाय। समुझत ही हरषाय ॥
जो पद जोगिउ झांकि सकत नहिं करि करि जोग उपाय।
तेहि पद को भूषन बनि बिछुआ औ पैजन झनकाय ॥
बिभ्रम[2] ही पर राग नयो नित कपट रहत तन छाय।
अधर सुधाधर नाक छिद्र धर श्रुति तरकी लहराय ॥
बालन को भूषित करि राखत अंजन आँखि लगाय।
रहत निरंजन[3] भाव न कबहूँ सगुनै सगुन दिखाय ॥
जेहि सरूप में श्रुति की गति नहिं अगति[4] रही तहँ आय।
इष्ट देबता सिय अगतिन की गाजति डंक बजाय ॥८५॥

❁ ❁ ❁

॥ सोरठ ॥

सिय जू की करुना लखि नहिं जाय, राम की तौ लखाय ॥
कौंनिउ मस से राक्षस मो पर प्रेम किये सुधराय।
यह करुना चोराय पतिव्रत मिस चली बनहिं हरषाय ॥

१—लालित्य, २–योगियों को समाधि का भ्रम कपट पूर्ण ही होता है, जबकि सीताजी का आकर्षण नित्य नवीन है—अधर सुधा धारण किए हैं, नाक में अमृत छिद्र है और कानों में साधकों को तर्कबुद्धि तरकी हो गई है। ३--निराकार-निर्गुन, ४--दीनता-दरिद्रता।

करि दुरदसा हरत राबन कहँ दियो सरूप चिन्हाय।
मैं अठारही[1] पति पचीस भौ[2] उमिरन[3] से वहकाय ॥
रामचन्द्र से प्रेम करे तब सुखी होय कपिराय।
तेहि कारन अपने पट भूषन कपि पर दीन्ह चलाय ॥
रावन मति पलटन ही चाहत सपनेहुँ रन न सोहाय[4]।
पति देवता न आप करनि सो पति को तस रुख[5] पाय ॥८६॥

॥ पद ॥

छबीले तेरी छवि पै गई मैं बारि।
छवि समुद्र मथि या मूरति पै, आप दिमो जनु ढारि ॥
छलकत छवि बिन्दु ही से मनु, रवि ससि गये सँवारि।
आन "देव" छाया से जगमग, जस श्रुति कहत पुकारि ॥८७॥

---

१ – अट्ठारह शक्तियाँ–कात्यायनी, कालरात्रि, कुष्मांडा, चन्द्रघंटा, ब्रह्मचारिणी, महागौरी, शैलपुत्री, सिद्धिदात्री, स्कदमाता, इंद्राणी, कार्तिकी, नरसिंही, ब्रह्माणी, महेश्वरी, रौद्री, वाराही, वैष्णवी, और सर्वमंगला।

२ – पच्चीस पति – विष्णु, ऋषभ, कपिल, कल्कि कूर्म, कृष्ण, दत्तात्रेय, धन्वंतरि, नरनायण, नारद, नृसिह, परशुराम, पृथु, बलराम, ब्रह्मा, बुध्द, मत्स्य, मोहिनी यज्ञ, राम वामन, वाराह वेदव्यास, हंस, हयग्रीव।

३ – काल और समय भेद से, ४ - अच्छा नहीं लगता, ५ – निर्देश।

श्रीराम के रूप की व्यापकता।

लीला-ऋतु विहार--पावस

॥ मलार ॥

राम हिंडोले झूलत सिय जू की करुना झलकि परी।
तिनकी का गति हुइहै जेहि दिसि रघुवर पीठि[1] करी।
पियहि सिंगारन के मिसि उठि उठि सिय तहं डीठ धरी॥
प्रभु ते गिरे फूल दल महि पर सिय लखि मोद भरी।
महि सरूप मैं तुम का करिहौं सत्ता[2] रूप खरी॥
बाम[3] जनहुँ कहँ तारन[4] कारन आप बाम दिसि अरी।
सुभग सर्वता भद्रासन पर बैठी सो न टरी॥
मुक्त भये विरक्त गुन याते मुक्ता परत झरी।
देव दृष्टि से यह रहस्य लखि मति पद माँह ढरी॥८८॥

॥ मलार ॥

श्री सिय जू की समता पावन का चाहसि द्वै दिन के सावन।
नित करुना रस धारा बरसति सिय हिय ताप नसावन।
तू ऊपर को ताप नसावै सोऊ कवहूं तरसावन॥
पंक[1] बढ़ावन तू सिय जू तौ जग को पंक[2] बहावन।
गरजवंत[3] सिथ अलगरजिन[4] जन की गरज पुरावन॥
तेरे घनश्यामहि दच्छिन को मारुत प्रबल उड़ावन।

१—विसार दिया, २. परम पूज्य, ३--बामपंथी अथवा श्रीराम के विरोधी, ४-उध्दार।

१—कीचड़, २--पाप, ३--गर्जता है गर्व दर्शाता है, ४-बिना इच्छा की,

सियजू को घनस्याम अकंपन[५] हिय अनुराग बढ़ावन ॥
सिय दामिनि घनस्याम राम जू मिलि कै भये सोहावन ।
देव सार अब निसरहि जैसे परत दूध में जावन[६] ॥८९ ॥

॥ पद ॥

सावन बरसि रहा है झम झम लौकत[१] बिजुरी चम चम ।
सिय की करुना सी जलधारा हरत ताप को कम कम ।
वह करुना तो सदा एक रस[२] धारा में तौ थम थम[३] ॥
धनु[४] सिन्दूर बकन की पांती सिया हंसनि छबि सम सम ।
सिय जू के गुन गाजत घन जनु वेद नगारा धम धम[५] ॥
उमगि चले भगतन के मानस नचत मोर मिस छम छम ।
हरी भूमि भइ सियाराम जू सब घट में जनु रम रम ॥
सिया चरन तरनी[६] बिनु ज्ञानी बूड़ि मरत करि हम हम[७] ।
सौतुक[८] देव रूप सावन को चितत सतजन दम दम ॥९०॥

---

५ -दृड़, ६-दही का अंश जो दूध जमाने के लिए डाला जाता है-भाव यह है कि दही जमाने के जैसे मक्खन निकलता है वैसे ही श्रीसीता-राम के स्थिर होने पर भक्ति रूपी मक्खन प्रकट होगा जो भक्तों का अभीष्ट है ।

१ – दिखाई देती है, २–अजस्र-सदा प्रवाहित, ३ -प्राकृतिक जल बरसने की ध्वनि तथा बिनाश की व्यंजना है, ४ इन्द्रधनुष सिन्दूर भरी मांग के समान है वगुलों की पंक्ति श्री जू के हास के समान कुछ कुछ मानी जा सकती है । ५--बादल की गरज के समान ही व्यापक वेद श्रीजू के गुणों का नगारा बजा रहा है, ६ -नाव, ७- अहं ब्रह्मोस्मि, ८--समान ।

॥ खेमरा ॥

देखो राम बने जनु सावन[1] सिय लागी रंग बढ़ावन।
सियबर की मोतिन की माला सो बग पांति लजावन।
इन्द्र धनुष सिंदूर सिया को घन रस को बरसावन॥
पछिलौ पौन सो संत बिचारौ स्यामघटा प्रगटावन।
रबि बिनु कबि बुध[2] मिलि कै लागे रस की झरी लगावन॥
सिय जू उत्तर दिसि की दामिन राम सरूप लखावन।
चमकि झमकि सो निस दासन के अंतर जोति[3] जगावन॥
ब्रह्म देवहूँ यह सावन को करत निरंतर ध्यावन।
सियाराम जू जनम जनम को जिय[4] की जरनि मिटावन॥९१॥

★ ★ ★

॥ पद ॥

मदन महीपति पाय सावन में, जनु संगीत ठने।
हरति भूमि जनु बिछे गलीचे, लता बितान तने॥
मेघ मृदंग भंवर सारंगी, दादुर ताल घने।
पवन तूंबरा झिल्ली रव सुर, पिक अलाप गने॥

१—श्रीराम का सावन ऋतु के साथ रूप सादृश्य २—विद्वान्, ३—ध्यान की स्थिति में आनंद ४—जीव।

रम्भा लटरत नचत मोर गन, तरुवर प्रेम सने ।
समय बन्यों अति घन रस बरसत, पूरन रागगने ॥
पंछी झूलत डार हिंडोला, परमानन्द छने ।
झरना धमकत पुनि पुनि सो जनु, "देव" निसान हने ॥९२॥

* * *

अवध बाग जस नन्दन[1] तहँ ऊँचो श्री खंड[2] ।
कनक हिंडोला तहँ परयो जामें कंचन दंड ॥
जगमग रतन अनेकन बगबग[3] कंचन पीठ[4] ।
नाद-बिंदु-मंडल[5] लसै जहँ पहुँचन नहिं दीठ ॥
तापर सियबर राजत जैसे दामिनि वन्त ।
दोउ दिसि प्रेम झुलावत साजत सुरत[6] इकन्त ॥
राग समय मंडल बन्ध्यो झरन लगे रस बुंद ।
रोम रोम रस भीनत मिटे पाप दुख दुंद ॥
दोउ[7] परस्पर अमिय से बनि रहे गर के हार ।

नोट:--लीला की वातावरण सज्जा के लिए यह पद लिखा गया है।

१—देवताओं का उपवन, २—श्री खंड नामक हिंडोल का स्थान, ३—चमकदार, ४—बैठने की पटुली, ५—ध्यान की अवस्था में बीज अर्थात् 'श्री' का मंडल प्रणव ध्वनि के साथ, ६ एक रस-ध्यान जनित आनंद; ७—श्रीजू तथा श्री राम जू जब आनंद में रागयुक्त हुए तब समाधिस्थ को रसस्राव होने लगा-साधक खो गया,

सुमनन[8] की बरसा भई गरजन की बलिहार ॥
वह कंकन वह सिरपट वह मोतिन की माल।
इन्द्र-धनुष मंडल बना पीत हरित अरु लाल ॥
श्रवन पुनर्वसु चौकड़ा नित सावनहि जनाव।
देखि मोर[9] मन हरषत पहुँची जड़ित जड़ाव ॥
या जोड़ी पर वारौं अपने तन धन प्रान।
पूरन-मंडल[10] मचि रहयो बाजत "देव" निसान ॥९३॥

★ ★ ★

भले[1] दोउ लालैं लाल लसैं।
मानहुँ दोउन के अंतर के, प्रगट राग[2] विकसैं ॥
लाल बाग में लाल डोर से, लाल हिंडोल कसैं।
लाल सखी कर फूल लिये हैं, बहुत सुगन्ध बसैं ॥
लाल बसन भूषन औ आसन, लाल चँवर हुलसैं[3]।
लाल लली तेहि मध्य बिराजत, पान खाय विहसैं ॥
लाल छत्र मंडल सिर सोहत, दोऊ काम[4] सरसैं।
रंग लाल कीया लाली लखि, 'देवन' कोमन फसैं ॥९४॥

८-मनस्वी साधको ने अपने को निछावर कर दिया, ९-जीव धन्य हो गया, १०—जीवों के मंडल के बीच श्रीजू और घनश्याम राम।

१—लाल शृंगार की झाँकी का ध्यान, २—प्रेम मूर्ति, ३— चलाई जा रही हैं, ४—अनुरागश्लथ।

आज दोउ झूलत रंग हरे, सजि सब साज हरे ॥
हरित कुञ्ज घन लता हरीहै, तरुवर हरित फरे ।
हरित भूमि नभ हरी हरी-मय, पंछी हरित चरे ॥
हरित हिंडोरा हरित डार में, हरित डोर जकरे[1] ।
हरित बसन भूषन औ आसन, चामर[2] हरित ढ़रे[3] ॥
हरित सखी दोउ ओर झुलावत, मेघ राग उचरे[4] ।
दोउ किसोर तेहि मध्य लसत हैं, हरित छत्र सिर धरे ॥
पीत स्याम आपुस में मिलि कै, हरित रंग उघरे ।
कोयल कीर मोर गन के मिस, देखहिं 'देव' खरे ॥९५॥

★ ★ ★

ललित[1] अति कुन्जन की घन घटा[2] । जाहि देख दुख हटा ॥
जाको रंग नील लहरत नित जस जमुना रस पटा[3] ।
रंग रंग के पंछी बोलैं मोर सोर करि रटा[4] ॥
लता तरुन के लिपटी जहँ तहँ बिद्या[5] निगमनि[6] छटा ।

१—फँसे, २—चँवर, ३—चल रहे हैं, ४—गाती हैं ।

१—आकर्षण पूर्ण, २—पावस कुंज-जिसके अन्तरगत पावसऋति में बिहार के अष्ट कुंज बने हैं, ३—संयोग और वियोग की रसानुभूति से पूर्ण, ४—कातरवाणी, ५—दस महा विद्याएँ-कमला, काली, छिन्न मस्ता, तारा, धूमावती, बगला, भुवनेश्वरी, भैरवी, मातंगी, षोडसी,

बेदन ही में तत्व रहत जस लखि न परत अटपटा[7] ॥
लली लाल के नित बिहार जहँ काहु सुकृत नहिं अटा[8] ।
तीनौं ताप न जाय सकत तहँ मनहुं उपासन[9] हटा ॥
घन रस बरषत पवन चलत जहँ सुख समाज तहँ ठटा[10] ।
कुन्ज देव सौं प्रेम नहीं तौ धिग भगवा धिग जटा ॥९६॥

★ ★ ★

कवित्त

महकै सिय अंग बसंत सोई कर पल्लव कोमल लाल लसे ।
मुखचन्द चुवै रस बोल सदा पद पंकज मानस में बिकसे ॥
सर लोचन भौंह कमान कसे, जग जीवन को जनुकाम बसे ।
अलि[1] कुन्तल जोबन अंग बनो, समता लखि कै नर 'देव' हँसे[2] ॥९७

★ ★ ★

झलकि रहे छवौं ऋतुन के साज, बिरहिन[1] तन पर आज ॥
निसि दिन विरह ताप ग्रीषम सो, स्वास आग निंदाज[2] ।
टपकत नैन सोई बरषा रितु, हहाकार घन गाज ॥

६—शास्त्री–आगम निगम, ७—तारतम्य रहित, ८—पूरा हुआ, ९—उपासना से अथवा उपास करने, १०—(१) वर्षा का वातावरण तथा श्री सीताराम जी का अखण्ड विलास, (२) योगियों जैसी समाधि में में प्राप्त परमानंद ।

१—भ्रमर, २—बसंत तथा श्रीजू की तुलना में श्रीजू की श्रेष्ठता ।

१—जीव श्री साक्षात्कार के लिए बेचैन है, २—निन्दित करती है ।

चित्रा[3] रवि अस काम जरावत, छन छन करत अकाज ।
थर थर काँपत हिम रितु सोई, बाढ़ी तन में खाज ॥
पति[4] बिनु बिपति सिसिर सो मारत, ज्यों तीतर को बाज ।
महँकत अंग गुलाबी अँगिया, खिले सुमन रितु राज ॥
राम लगन में मगन रितुपति, दृग में अंजन आँज ।
इष्ट 'देव' को हँसि हँसि निरखत, गई कपट की लाज ॥९८॥

★ ★ ★

होरी

सियाराम सिंगार फागुन के दिनन में ॥
सिया केसरिया अम्बर[1] पहिरे, गर मोतिन के हार ।
राम गुलाली[2] अम्बर साजे, रतनन की बलिहार ॥
परम प्रीति को पीत रंग है, राग रंग रतनार[3] ।
प्रीति राग में दोऊ बसे जनु, महँक सुगंध बिहार ॥
महकत फूलन के तन भूषन, रंग रंग सजदार ।
केसरि रंग गुलाल राखिये, औ कंचन पिचकार ॥
बाजत बाजन नाच थिरकि रह्यो, नूपुर की झनकार ।
काम-'देव' जनु दृग अंजन मिस, देखत रंग अपार ॥९९॥

३—आश्विन कार्तिक, ४—श्री सीताराम ।

१—परिधान; २—लाल वर्ण का, ३—हल्का गुलाबी ।

होरी

दशरथ नन्दन जनक नन्दिनी, निज पुर खेलत हो हो होरी ॥
केसरि की पिचकारि चलत इत, उत गुलाल की उड़ि रही झोरी।
एक रंग दोऊ चीन्ह परत नहिं. को सांवर है को है गोरी ॥
करुना मैत्री मुदिता[1] आदिक, सखियन की इत लगि रही डोरी।
प्रेम प्रमोद अनन्दादिक[2] उत सखा मिलत जोरी सन जोरी ॥
छवों सास्त्र ते साज बजत मिलि, सब्द[3] ब्रह्म की भइ घनघोरी।
प्रगटत एकै राग सबन से रही न तैं तोरी मैं मोरी[4] ॥
अवधपुरी तन मन सो मन्दिर, मति सियजू पिय रंगन बोरी।
आतम[5] 'देव' राम नित बिहरत, यामें नहिं कछु छोरा छोरी[6]।१००

★ ★ ★

लाल लली दोउ चातुरी होरी खेलि रहे सैनन[7] में।
सकत न खेलि उजागर पापिनि, लाज बसी नैनन में ॥
बाम अंग यह परसत अपनो वह दाहिन चैनन में।
एकै गाल गुलाल लगावहिं भीजि रहे मैनन में ॥

१—श्री सीताराम जू के सद्गुण रूप सखियां हैं, प्रेम, प्रमोद तथा आनन्द रूपी सखा श्री राम जू के साथ हैं; ३—गान तथा हास्य उत्पन्न करने वाले व्यंग्य, ४—भेद मिट गया अभेद दिखाई देने लगा, ५—आत्मा—श्री रूप, ६—विवाद, ७—नेत्र विलास।

दोउन की दोउ सुंदरि मूरति, देखि रहे ऐनन[1] में।
दोउ अंकन में मुख धरि सोवत, ज्यों पंच्छी डयनन[2] में॥
कोउन पै भरि भेद न पावत, इन्ह सूनी रैनन में॥
दुर्गम "देव" रहस्य न कैसेउ, आइ सकै बैनन मे ॥१०१॥

★ ★ ★

ऐसी देखी सुनी नहीं होरी, जहां स्याम लाल स्यामा गोरी॥
भयो अबीर बीर रंग गति को, जहँ उमड़ी भई रोरी।
तर भो अतर पान भो बीरा, चतुर भइ जहँ भोरी॥
सरस रसीलो भई बावरी, हार जीत के छोरी।
कुलवन्तिन जहँ लाज तजत हैं, साह भई हैं चोरी॥
हाहाकार आनन्द देत हैं, तैसिहि छोरा छोरी।
इन छोरा छोरी पर वारत, ब्रह्मानन्द करोरी॥
बंसी[3] ध्वनि ते जीव हरत जहँ, सोहि रही वर जोरी।
जिन गहनन में रतन[2] विराजत, 'देव' हँसे मुख मोरी ॥१०२॥

★ ★ ★

छवो ऋतु दमकत हैं सांवरिया की फाग में।
अतर गुलाब अरगजा महकै सो बसंत यहि बाग में॥
काम अगिनि ग्रीषम रितु लहकै, जौवन मद अनुराग में।
घन रस वरषत सो वरषा रितु, गरज पखाउज[4] लाग में॥

१—दर्पण (फा०) २—पंख में, ३—नाद ध्वनि के आकर्षण से, आत्मा, ४—मृदंग।

क्रियायंत्र

! सत् वापी

∽ तम वापी

⁝ रज वापी

◎ तीन नदी बाहर, तीन भीतर

★ तीन त्रिभुज

✺ अष्ट दल कमल—अष्ट देवी का स्थान

◎ ज्ञान कूप ● कर्म कूप ◍ इच्छा कूप

+ अंगदेवता ✦ गनपति — भैरव

× रुद्र ○ समीरकुमार

बदन चन्द अम्बर तारा नग, सरद रही बेदाग[1] में।
रस सुख हिम रितु औ' निरोगता, मित्र दाहिने भाग में॥
लपटनि औ' पतिभ्कार सिसिर रितु दिन दिन बाढ़ि सोहाग में।
'देव' चरित निरखहिं बड़भागी, अरूझे लटपट पाग में॥१०३॥

★ ★ ★

मेरे नित ही रहै होरी, सखि राम दुलह को पाय।
प्रेम रंग पिचकारि चलत है, लाल गुलाल उड़ाय॥
एकटक देखि रही वाही को, देह दसा बिसराय।
बनो 'देव' सेवक को नातो, मंगल गाय बजाय॥१०४॥

धाम-परत्व

॥ जंगला ॥

मिथिला बिद्या यंत्राकार[1] यह तंत्रन[2] को सार।
कमला बिन्दु त्रिकोन तीन मुनि मंडल लघु बिस्तार।

१—निष्कलंक, ।

नोटः—संत के यहाँ नित्य 'देवारी' 'होरी' रहती है वह भी 'श्रीराम दूलह' को पाकर प्रेम की होली खेलते हैं।

१—श्री यंत्र का यह एक प्रकार है जो रामोपासको में प्रचलित है, विद्या यंत्र द्वारा साधक माया मोह के बन्धन से मुक्त हो जाता है और उसे आनंद की अनुभूति होने लगती है। २—अनेक उपायों के जो शास्त्र हैं।

सुभग अष्टदल आठौं देवी परिधि नदिन की धार ॥
अंग देवता गनपति भैरव रुद्र समीर—कुमार ।
बापी तीन कूपहुँ तीनों तीरथ दस का सार ॥
देवदार बट पापर गूलर पंचम हरसिंगार ।
तीन सरित प्रत्यंग देवता जिनको लघु बिस्तार ॥
मंडल जोजन सातक चहुँ दिसि चार बेद रखवार ।
तीनहुं तन से तिरहुत कहिये देवन को आगार[1] ॥१०५॥

★ ★ ★

मिथिला को न पावत सात सरग[2] ।
कर्मन को फल सरग कहत श्रुति करम धरम जैमिनि को वरग[3] ।
सो जैमिनि जेहि भजत निरंतर चलत न कतहूं एक परग[4] ॥
गौतम कपिल महामुनि यहि थल बिश्व वदर[5] सम जिनके करग[6]

१—यह यंत्र तीन त्रिकोंण का पांच मुनियों के मंडल के बीच, त्रिकोंण के बीच अष्टदल कमल, कमल के चारों ओर तीन नदियों का मंडल, पांच कोणों में अंगदेव, गणपति, भैरव, रुद्र और श्री हनुमान जी, रज, तम और सत की तीनवापी, ज्ञान, इच्छा और कर्म के तीन कूप हैं और क्रमशः ज्ञान कूप पर देवदारू, कर्म कूप पर बट, सत् वापी पर पीपल, तम वापी पर गूलर और रज वापी पर हरसिंगार बृक्ष हैं; इसके चारों ओर तीन नदियों का मंडल है तथा चार ओर से वेद रक्षा कर रहे हैं। यह परिधि सात योजन की है। यह मिथिला की रचना है जो स्वयं विद्या रूप है।

२—स्वर्ग, ३—वर्ग का भेद, ४—एक पद भी, ५—नाश, ६—कर में,

जहँ जागती जोति कमला की जाको सेवत आप भरग[६] ॥
अति उत्तम श्रोत्रिय यहि थल में जात विभूषन जैसे गरग[७] ।
जिनके सरस बचन के आगे बिरस सुधा जैसे मोती ढरग ॥
बीज मंत्र या थल प्रताप से जपतै महकत जैसे अरग ।
रुद्र देव बिधि से प्रतिपालत जिन को चमकत दान खरग[८] ।१०६।

★ ★ ★

॥ धना श्री ॥

मिथिला पावन तीनिउ काल क्रतु[१] मंडप के मिसाल ।
जागबलिक अध्वर्ज[२] उचारत जैमिनि साम[३] सुचाल ॥
ब्रह्मा व्यास अष्ट दल बेदी चार बेद दिगपाल[४] ।
कमला जोति और मुनि रित्विज[५] भैरव भूप निसाल ॥
अंग उपंग सदस्य बेद के उपद्रष्टा सुरपाल ।
बुध जन मंत्र जनित सो अमृत तीरथ सरिता ताल ॥
फरत मनोरथ सो पुरनाहुति[७] जापक होत निहाल ।
देवराज ते मिथिला भूपति हरत जरन[८] जंजाल ॥
सखी रहत सब निज निज सुख में बूढ़ तरुन और बाल ।१०७

६—भृगु मुनि, ७—गर्ग मुनि, ८—खड्ग-दान रूपी तलवार ।

१—यज्ञ, २—अथर्वण, ३—सामवेद की मीमांसा, ४ दिशाओं की रक्षा करने वाले, ५—यज्ञ कर्ता, ६—देवतागण, ७—पूर्णाहुति, ८—तीनताप ।

॥ सोरठ ॥

सरद सी मिथिला होय रही ।
अंबर[1] बिमल बिमल तारा कुल घन घमंड[2] को खोय रही ।
भूमि प्रताप अगस्ति[3] उदै से जीवन को मल धोय रही ॥
जहँ द्विजराज अमल झलकत जेहि प्रजा चकोरी जोय रही ।
सुजस चाँदनी निर्मल पसरी जी[4] की जरनि टक टोय[5] रही ॥
काम अकाम नित्त नैमित्तिक कर्म बीज को बोय रही ।
यंत्रन[6] को रस यंत्रन[7] ही से ऊख समान निचोय रही ॥
महा सास्त्र दीपक से जगमग तिन को नेह संजोय रही ।
देव उठान महा मंगल रचि अपने सुख से सोय रही ॥१०८॥

★ ★ ★

॥ होरी ॥

तिनके संतन की बलिहारी[8], जे सियजू के नगर बसत ।
छोटी कुटिन में सियाराम की जोरी रुचिर पधारी ।
राति दिवस परिचरत[9] प्रेम से बारंबार निहारी ॥
सरल सुसील भाव के भूखे धरम नेम व्रत धारी ।
गावत नाचत परम हरष से बइठि लगावत तारी ॥

१—आकाश, २—गर्व, ३—अगस्त तारा जो आश्विन में उदय होता है-मल रहित; ४—जीव, ५—ढूंढ, ६—श्री का आनन्द, ७—शरीर यंत्र के अन्तर्गत, ८—प्रशंसा, ९—सेवा करते हैं।

कोउ पखारत कोउ सिंगारत कोउ चँवर कर ढारी।
कोउ गावत भल कोउ अरथावत[1] ललित कथा विस्तारी॥
चरन सरन सब विधि से जिनके भई अन्दर उजियारी[2]।
आन देव इनके अंगन में देखत धरम बिचारी॥१०९॥

★ ★ ★

एक परम तत्त्व कहौं सुनिये करि चावरी।
मानौ परमान[3] पाय बात छोड़ बावरी॥
कमला श्री सरयू श्री जनक राय डावरी[4]।
तीनों में है अभेद यामें नहिं भाँवरी[5]॥
रामचन्द्र गंडक औ' अवध तीनि नाँव[6] री।
इनहूं में भेद नहीं मूरति सोइ साँवरी॥
श्रुति पुरान संमत[7] यह नहिं किछु बनावरी।
मेरे तो इष्ट देव संतन की पांवरी[8]॥११०॥

★ ★ ★

॥ सोरठ ॥

मिथिला अवध हैं दोऊ समान, या को करिये ध्यान॥
ब्रह्मपुरी श्रुति इनको बोलत तैसोइ कहत पुरान।

१—अर्थ लगाते हैं, २—प्रकाश, ३—प्रमाण, ४—पुत्री, ५—भ्रम, ६—नाम, ७—मत-निचोड़, ८—खराऊँ या जूता।

दोनो ब्रह्मपुरी में का को करिये गुरु लघु ग्यान[1] ॥
एकै जोति दोउन में झलकत जस आंखिन में भान[2] ।
दोय ब्रह्म कहु को मानैगो माने से नोकसान ॥
सियाराम से बना ब्रह्मपद लड़त इहां अग्यान ।
यह रहस्य सतन ही के घर का जानिहै रुखड़ान[3] ॥
और पुरी नहिं ब्रह्मपुरी कहि सुनिहुँ मनहुँ बौरान ।
कवन देव को मैं गोहरावों चुप रहनो मन मान ॥१११॥

★ ★ ★

शरणागति

॥ धना श्री ॥

मन की मनहीं मांह रही ।
सियाराम को किंकर होइहौं जिय में धरी यही ।
किंकर भये काम कंचन के दिन दिन बिपति सही ॥
सेइहौं साधु संत चरनामृत ऐसी बहुत चही ।
जनम गयो कामिनि मुख चूमत मुख में लार लही[4] ॥
सियाराम पद चिंतन करिहौं बैठि एकांत कही ।
जन्म सिरान बिषय चिंतन में कछु नहिं जात कही ॥
देव सरीर पाय कै अब तौ देखिहौं अवध मही ।
बेंचत फिरै कवन दर दर में कहि कै दही दही ॥११२॥

१—समझ, २—लगता है, सूर्य, ३—तत्त्वज्ञानी, ४—पाया ।

काहू न हमारी सुरति कराई, श्री चरनन लौं जाई।
सरजू अवध संत जन इनसे, वहुत कहेउं बिलखाई[1]।
ध्यान मगन ये भये मूक जड़ देह दसा बिसराई॥
बेद अबेद[2] होत वा पद में, नेति नेति अस गाई।
उन बेदन[3] से आपन बेदन.[4] कहत जीव सकुचाई॥
पति पद सुरति[5] लगी सियजू की, आन भाव न समाई।
उनको सुरति आन की कैसे होइ न बात कहाई॥
सखी दीनता[6] यहि 'देवल' में छनक रहै जो आई।
तौ चटपटी[7] परै सियजू को, ईहई नीक उपाई॥११३॥

★ ★ ★

सिय जू के चरन सरन होहु जन उमंग से।
करूना रस रूपै यह लखहु गोर[8] अंग से॥
यह रस तो बहत कम न जमा कौन ढंग से।
अति छमा[9] जुड़ाइ पाय रसो जमत भंग से॥

१—करुना सहित, २—अभेद-भेद रहित, ३—बेदान्ती लोगों से, ४—वेदना-पीड़ा, ५—ध्यान लगा है, ६—सखी भाव की दीनता, ७—बेचैनी, ८—गौरांगी, ९—क्षमा भाव।

पतितन को यही अघार भूमि खर पतंग से।
याके गुन सुमिरि जमौ[1] होय रहत दंग से॥
राम देव प्रभु सच पै सिय के परसंग से।
महकत तरु आन[2] जथा मलै के तरंग[3] से ॥११४॥

★ ★ ★

सियजू की महिमा को पटतर[4] नहिं पाय सकौं।
कबितन की बातन से मन नही थिराय[5] सकौं॥
चिंतामनि[6] काम धेनु[7] तेहि समान गाय सकौं।
अनिष्ट हूँ को देत ते न दोष यह मिटाय सकौं॥
तारक[8] हैं लाखन मैं कहां लगि गनाय सकौं।
तिन में सिय चरन रज प्रताप ही देखाय सकौं॥
सत्ता सो भूमि सोई भूमि सुता भाय सकौं।
यह रहस्य देव दिष्टि बिना केहि बुझाय सकौं ॥११५॥

★ ★ ★

१—यमराज भी, २—वृक्ष, ३—प्रसंग-लहर वायु की जो चन्दन वृक्ष से होकर लगती है।

४—तुलना, ५—स्थिर, ६—वह मणि जो देवताओं की सब कुछ देती है, ७—अभीष्ट देने वाली गौ, ८—पार उतारने वाले (भव-सागर के)।

॥ दीनता रहस्य ॥

॥ धनाश्री ॥

अब सियजू के सरन भये, सब टकटोरि[1] लये ।
रसना[2] कारन दंड कमंडल मांगत जनम गये ।
ब्रह्म बनन के एई लच्छन भूठन के सिखये ॥
सीधो अरथ न मानत श्रुति को खैंचि बाद[3] मचये ।
पिछिला पद कुठहर[4] नहिं संमरत बिनु औलंब[5] हये ॥
साँचे भेष देख के मारे अंदर लोभ छयं[6] ।
तिनके संगहु ते छिन छिन में पापहि को बिढये[7] ॥
जरो बड़ाई जरो ग्यान वह जहां न मान[8] छये[9] ।
देव दुहाई दीन[10] होत ही नित आनन्द नये ॥११६॥

★ ★ ★

॥ होरी ॥

चरन[11] सरन मैं आई सियजी को खबर करो ।
करम ग्यान बैराग बहाये, इन ते कुछ हू सार न पाये,
एक दीनता लये सहाये, संतन यही सिखाई ॥

१—ढूँढ, २—जिह्वा-स्वाद, ३—विवाद मत, ४—अनुपयुक्त स्थान पर, ५—आधार, ६—छाया हुआ, ७—बढ़ाया, ८—अहँभाव, ९—नष्ट हुआ, १०—दैन्य आते ही । ११—आत्म समर्पण ही जीव के उद्धार के लिए आवश्यक बताया है ।

अहं भाव को धूप बनायो, मंदिर में महँमहँ महँकायो,
दास भाव तन मन में छायों, गुरु अस राह बताई ॥
इन्द्रिन से वाही[1] को भजिये, मन[2] को हार अमोलिक सजिये,
छल चतुराई कपट को तजिये, दिढ़ कर गही सिधाई ॥
बिनु जाने मैं करों लड़ैया, देवल मुनि अस गाई ।११७।

* * *

॥ ठुमरी ॥

अब तो दास भये हैं खासे, सियबर रूप पियासे ।
आई दीनता बात बनी सब सियजू की करुना से
अहंकार का कूरा पटका बेदान्तिन के बासे[3] ॥
इरिषा खाज धरी गोरुन में क्रोध सांप के डासे ।
सब ऐगुन[4] निन्दक के सिर धरि नित मन बढ़त हुलासे ॥
द्वैत सदा अद्वैत कबहुं नहिं चौड़े कहहुँ खुलासे ।
दास भाव का डंका बाजै बेदन की महिमा से ॥
मंगल मय दिसि विदिसि हमारे सकल अमंगल नासे ।
राम देव के नाम दीप से अन्दर भवन प्रकासे[5] ॥११८॥

१--'श्री' को, २--भावना में ३--स्थान पर, ४--अवगुण,
५--नाम और भावना को प्रधान माना है ।

॥ होरी ॥

वा छवि कब मन में बसैगी, जनक नन्दिनी की जगमग।
लह लह लाल चरन तल कोमल, लागत मखमल हूं जिनको मल,
जन कठोर मन को करि मोमल, मति अनतैन धसैगी[1] ॥
सबसे दीन अधीन रहैगो, नाहक गारी मार सहैगो,
याके रस को खूब महैगो, यह सुख मति हुलसैगी ॥
धन जीवन को गरब छोड़िके, स्तुति निंदा ताग तोड़िकै,
संत चरन में प्रेम जोड़ि के, काहू को न हंसैगी ॥
हिय धरि रूप नाम मुख से रट, कतहुँ एकांत बैठि सरिता तट,
कामदेव के भोगन से हट, नागिन[2] हूँ न डसैगी[3] ॥११९॥

* * *

सियजू के पायन की सुधा तनिक चीख[4] ले।
यह जो न जाने तौ भेदिन[5] से सीख ले ॥
श्रुति सिर उपनिषदन को उलटि पलटि झीख[6] ले।
तत्व छोड़ि बाँदर सो चाहि ढील लीख ले ॥

१—लगेगी, २—मृत्यु, ३—भाबना को श्री सीताराम के नाम रूप लीला और धाम के वातावरण में श्रेष्ठ कहा गया है। ४—स्वाद ले, ५—भेद जानने वालों, ६—झख मारले।

ग्यान जोग सुधा मुधा श्रुतिन से परीख[1] ले।
प्रेम की बजार जाय तू तिखार[2] तीख ले॥
यही परम सार देव दिष्टी से निरीख[3] ले।
दीन औ अधीन होय सतगुरु से भीख[4] ले॥१२०॥

★ ★ ★

मेरो कहाँ अस भाग, द्वारे परे रहों,
संतन को कछु जूठन-काठन[5] मिलै अलोनो[6] साग।
केहि गनती में इन्द्र बापुरो, जस कूकर औ काग॥
तीन काल[7] सियजू की झाँकी[8] देख परिहि बेदाग[9]।
जुग जुग से सोवत यह जियरा देखें कैसे न जाग॥
संत चरन रज तन को भूषन सोई अचल सोहाग[10]।
रतन मनिन के बरहो भूषन मलसे[11] करिकै त्याग॥
सदा बसन्त देवारी जगमग मची रहै नित फाग[12]।
सिया राम जोरी के आगे है आनन्द की बाग॥१२१॥

१—परीक्षा ले लो, २—पूछ लो, ३—देख लो, ४—दीक्षा ले—भक्ति के मार्ग को अपनाने को कहा है, ५—सीत प्रसाद, ६—बिना नमक का ७—प्रातः, अपराह्न, रात्रि ८—छवि का दर्शन ९—बिना संदेह—निस्सन्देह १०—सौभाग्य, ११—मल समान, १२—भाव-भावना।